http://www.jainkosh.org

आप्तमीमांसा प्रवचन

[दशम भाग]

प्रवक्ता :

(अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु. मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज)

अन्तरङ्गार्थतैकान्ते बुद्धिवाक्यं मृषाखिलम् ।
प्रमाणाभासमेवातस्तत् प्रमाणादृते कथम् ॥ ७६ ॥

विज्ञानमात्र अन्तरङ्ग अर्थके एकान्तमें दोषापत्ति—अब इस परिच्छेदमें दो बातोंकी मीमांसा चलेगी । कोइ दार्शनिक मानता है कि सारा विश्व केवल एक विज्ञान मात्र है तो कोई दार्शनिक कहता है कि यह सारा विश्व पृथ्वी, जल, अग्नि आदिक सर्व बाह्य पदार्थ मात्र हैं । इन दो प्रसंगोंमें सर्वप्रथम विज्ञानवादी यह कहते हैं कि जो अन्तरङ्ग स्वसम्विदित ज्ञान है, अर्थात् ज्ञान है और अपने ही द्वारा अपने आपकी ज्ञान परिणति हो रही है, स्वयं अपने ज्ञानको समझ भी रहा है ऐसा स्वसम्विदित ज्ञान ही वास्तविक पदार्थ है और वह है अन्तरङ्ग । तो अन्तरङ्गकी वास्तविकताके एकान्तको अन्तरंङ्गार्थतैकान्त कहते हैं । विज्ञानवादीका कहना है कि बहिरङ्ग जो जड़ पदार्थ हैं, जो कि प्रतिभासनमें आते हैं, प्रतिभासनके योग्य हैं वे वास्तविक नही हैं किन्तु अन्तरङ्ग विज्ञानवाद ही वास्तविक है । इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि केवल विज्ञानको ही वास्तविक माननेपर फिर तो ये सारे अनुमान और आगम आदि प्रमाण जो हेतुवाद और अहेतुवादके बलपर टिके हुए हैं वह सारा उभय तत्त्व फिर मिथ्या हो जायगा और जब अनुमान एवं आगम मिथ्या हो जायेंगे तो फिर यह प्रमाणाभास ही कहलायगा । अनुमान और आगम ये मिथ्या हो जायेंगे, क्योंकि प्रमाण तो सत्यताके साथ व्याप्त हुआ करता है, प्रमाणाभास मिथ्यापनके साथ लगा हुआ होता है । तो अब केवल एक विज्ञान मात्रको ही वास्तविक माना तो अनुमान और आगम जिनका विषय अन्य अन्य है वे सब प्रमाणाभास हो जायेंगे, मगर एक बात तो और समझिये प्रमाणाभास प्रमाणके बिना हो कैसे जायगा ? तो जब प्रमाण के बिना प्रमाणाभास होना सम्भव नहीं है फिर तो प्रमाणाभास है इसका व्यवहार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करना ही अवास्तविक हो जायगा तब वह शङ्काकार विज्ञानवादी स्वप्न व्यवहारकी तरह कल्पनासे भी उस व्यवहारको कैसे जान सकेगा ? यह प्रमाणाभास है यह व्यवहार भी न बन सकेगा, क्योंकि प्रमाणाभास प्रमाणके बिना सम्भव नहीं है । प्रमाण माननेपर बुद्धि वाक्य अनुमान आदिक सब स्वीकार करने होंगे फिर अन्तरङ्ग अर्थ अर्थात् विज्ञान मात्रका एकान्त कैसे रहेगा ?

अन्तरङ्गार्थतैकान्त (विज्ञानमात्र) के आशयका निराकरण— अब यहाँ शङ्काकार विज्ञानवादी कहता है कि देखिये ! उस अर्थसे ज्ञानका जन्म होता है इस कारणसे व्यवहार बन जाता है कि यह इस पदार्थका ज्ञान है, यह मिथ्या है आदिक और उनमें कार्यप्रभवता भी है अर्थात् निमित्तकारणता है । तो ये ही सब वेद्य वेदकके लक्षण हैं । तो वहाँ अनैकान्तिकपनेको दिखाकर सम्वेदन ही जो खण्ड खण्ड रूपसे प्रतिभासमान हो रहा है वेद्य वेदकके विभागरूपसे वही एक विज्ञान प्रतिभासित हो रहा है, सो वह व्यवहारके लिए कल्पित कर लिया जायगा । इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा अभिप्राय कर लेनेपर भी प्रमाणकी खोज तो करनी ही होगी । देखिये ! दोनों के अभावमें तज्जन्मता और तद्रूपता और प्रत्येकका वेद्यवेदक लक्षण इन सबका व्यभिचार बताया जाना अशक्य है । जैसे कि चक्षु इन्द्रियसे तज्जन्मता और तद्रूपताका जो वेदन कर रहा हो उससे जो कि सीपमें चाँदीका अध्यवसाय कर रहा हो उसके साथ व्यभिचार दिया जाना जैसे अशक्य है उसी प्रकार प्रमाणके अभावमें तज्जन्मता आदिकका व्यभिचार बताया जाना अशक्य है । शङ्काकारका यह अभिप्राय था कि तज्जन्मता आदिकका जब व्यभिचार देखा जाता है तब वास्तविक तो विज्ञानमात्र ही रहा । बाह्य पदार्थके विषयका सम्वेदन केवल एक व्यवहारके लिए ही कल्पित किया गया है । तो यह सब बात प्रमाणके अभावमें नहीं बतायी जा सकती है अथवा प्रमाणके अभावमें एक साथ समान अर्थका समनन्तर ज्ञानके द्वारा अर्थात् उत्तरपूर्ववर्ती अनन्तर ज्ञानके द्वारा तदुत्पत्ति और तद्रूपताका व्यभिचार नहीं बताया जा सकता । कामला आदिक रोगोंसे जिसकी आँखें सदोष हुई हैं, उनका जो शुक्ल शङ्खमें पीताकार ज्ञान होता है उस समनन्तर ज्ञानके द्वारा भी व्यभिचार प्रमाणके अभावमें नहीं दिखाया जा सकता अर्थात् प्रमाण न माननेपर अनुमान आगम आदिक न माननेपर विज्ञानाद्वैतवादी इन सब दूषणोंको दिखानेमें समर्थ नहीं हो सकते अथवा ज्ञानका निमित्तकारणपना पदार्थमें रहता है और वेद्यवेदकका जो कुछ लक्षण कहा गया है सो उस सबका चक्षुके साथ अनैकांतिकपना और चक्षुनिमित्तक ज्ञान कार्यकी व्यवस्था भी कैसे कर सकेगा ? प्रमाणके अभावमें यह सब व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती । और कैसे कार्यकारणभावरूप प्रभवका किन्हीं संख्या आदिकके प्रति अथवा योग्यताका वेद्यवेदक लक्षणरूपसे व्यभिचार दे सकेंगे ये शङ्काकार । प्रमाण न मानने पर शङ्काकार कुछ भी दूषण देनेमें समर्थ नहीं हो सकता । अथवा सम्वेदन ही खंड

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खंड रूपसे प्रतिभासमान होता हुआ वेद्यवेदक आदिक व्यवहारके लिए माने जाते हैं यह अभिप्राय भी कैसे सिद्ध कर सकेगा ? प्रमाणके अभावमें ये सब बातें नहीं बन सकती हैं इस कारणसे प्रमाणको तो खोजना ही पड़ेगा। बुद्धि और वाक्यको कैसे मना कर सकते हैं ?

अन्तरङ्गार्थैकान्त में (विज्ञानमात्र के आग्रह में) शंकाकाराभिमत क्षणिकत्व सन्तान आदिकी सिद्धिकी अशक्यता—और भी सुनो—इस विज्ञानवादीके सिद्धान्तमें सम्वेदनका क्षणिकपना, सम्वेदनकी अनन्यवेद्यता, अर्थात् किसी अन्यके द्वारा नहीं जाना जाता, किन्तु सबके द्वारा ही जाना जाता ऐसे सम्वेदनकी अनन्यवेद्यता और सम्वेदनोंमें अन्य संतानपना आदि कैसे सिद्ध हो सकेगा ? यह विज्ञानवादी चूंकि निरंशवादी क्षणिकवादी है विज्ञानमात्र तत्त्व मानता तो है, पर सब विज्ञान क्षणोंके एक अद्वैतरूपमें नहीं किन्तु क्षण क्षणमें विज्ञान क्षण बनता है और वह केवल विज्ञान विज्ञान ही है, अन्य कुछ नहीं है। इस प्रकारका नाना संतानपना भी कैसे सिद्ध कर सकेगा ? ये सब बातें स्वतः सिद्ध नहीं हो सकती। ज्ञानाद्वैतवादियोंके यहाँ अपने ही ज्ञानसे सर्व सम्वेदनोंका क्षणिकपना सिद्ध नहीं होता। क्योंकि दूसरेका ग्रहण करने वाले ज्ञानसे चूंकि वहाँ ग्राह्य ग्राहक भाव आ गया इस कारण भ्रान्त मान डाला है। तो किसी पर तत्त्वको माने बिना विज्ञानवादी सर्व सम्वेदनोंको क्षणिक, अनन्यवेद्य, नाना संतानमें रहने वाला आदि तत्त्व सिद्ध न कर सकेंगे। क्योंकि ग्राह्यग्राहकभावपूर्वक ज्ञान होता है सो सब भ्रम ही कहलावेंगे। यदि शंकाकार कहे कि स्व सम्वेदनसे ही स्वतः सिद्ध हो लेगा, इन सब बातोंको वह विज्ञान स्वसम्वेदनसे ही साध लेगा सो भी नहीं कहा जा सकेगा, क्योंकि क्षणिकपनेके रूपसे अनन्य वेद्यपनेके रूपसे, नाना संतानपनेके रूपसे स्व सम्वेदन नहीं हो सकता है। जैसे कि सर्व वेद्यत्व नित्यत्व और एकत्वके साथ परब्रह्मका सम्वेदन वे क्षणिकवादी नहीं मानते तो स्वसम्वेदनसे भी ज्ञानोंका क्षणिकपना अनन्य वेद्यपना आदिक सिद्ध नहीं हो सकता। और, जब क्षणिकत्व आदिकके रूपसे ये बातें सिद्ध नहीं हो सकती, तब ज्ञानोंका स्वरूप सम्वेदन होनेपर भी चूंकि सर्व ज्ञान निर्विकल्प हैं तब प्रमाणान्तरकी अपेक्षासे विकल्पज्ञानसे वे अनुपलब्धिके ही कारण बनेंगे। जो प्रमाणान्तरकी अपेक्षा नहीं रखते ऐसे ही और व्यवसायात्मक स्वसम्वेदनमें उस उपलब्धपनेकी व्यवस्था बनाई जा सकती है अर्थात् वही ज्ञान ठीक माना जा सकता है, पर जहाँ व्यवसाय नहीं है वहाँ ज्ञानोंके अभ्याससे भी क्षणिकत्वरूप वस्तुकी उपलब्धि नहीं हो सकती। अतः मानना पड़ेगा कि केवल विज्ञानवादका ही एकान्त रहे तो स्वयं विज्ञानकी भी सिद्धि नहीं हो सकती।

अन्तरङ्गार्थैकान्तकी प्रत्यक्षविरुद्धता—विज्ञानवादी जिस प्रकारसे बुद्धिका वर्णन करता है अर्थात् नाना संतानगत ज्ञानमात्रका वर्णन करता है उस प्रकार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान प्रतिभासित नहीं होते। वह सब ज्ञान क्षणिक आदिक रूपसे विपरीत ही अर्थात् नित्यादिक रूपसे ही प्रतिभासमें आता है और उनका ऐसे ही प्रतिभासका अभ्यास सिद्ध है तो प्रत्यक्षसे तो विज्ञानमात्र तत्त्वकी व्यवस्था नहीं बनती और न अनुमानसे भी क्षणिकत्व आदिककी सिद्धि होती है अर्थात् वह विज्ञानमात्र तत्त्व है और और क्षणिक हो यह बात सिद्ध नहीं होती, क्योंकि साध्य साधनकी व्याप्तिका ज्ञान विज्ञान मात्र तत्त्व मानने वालेके सिद्धान्तमें नहीं बन सकता है। कोई विसम्वादी यह सोचे कि क्षणिकत्वके साथ सत्त्वादिक लिङ्गकी व्याप्ति बन जायगी। जो जो सत् है वह सब क्षणिक है, इस तरह की व्याप्तिके द्वारा सम्बन्धका ज्ञान होजायगा सो यह बात प्रत्यक्षसे तो जानी नहीं जाती अर्थात् सत्त्वका क्षणिकपनेके साथ सम्बन्ध हो इसको व्याप्तिके द्वारा सम्बन्धका ज्ञान हो जायगा सो यह बात प्रत्यक्षसे तो जानी नहीं जाती अर्थात् सत्त्वका क्षणिकपनेके साथ सम्बन्ध हो इसको प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं जान रहा है क्योंकि प्रत्यक्ष तो सामने रहने वासे पदार्थके बलपर ही उत्पन्न होता है और साथ ही प्रत्यक्ष ज्ञान विचारक नहीं होते, किन्तु जो सामने हैं उनका प्रतिभास हो जाय इतना ही मात्र प्रत्यक्षका काम है। अब विचार करना कि जहां जहां सत्त्व पाया जाय वहाँ वहां क्षणिकपना होता है तो यह विचारकी बात प्रत्यक्ष ज्ञानमें नहीं पड़ी हुई है। तो क्षणिकत्व साध्यके साथ सत्त्वादिक साधन सम्बन्ध ज्ञान प्रत्यक्षसे न बना और क्षणिकत्वके साथ सत्त्वका सम्वन्ध ज्ञान अनुमानसे भी नहीं बन सकता। यदि साध्य साधन के सम्बन्धका ज्ञान अनुमानसे किया जायगा यो अनवस्था दोष आयगा, क्योंकि अब उस सम्बन्ध प्रतिपत्तिके ज्ञानके लिए जो कुछ कहा जायगा वह अनुमानसे ही कहेंगे तो उस अनुमानमें भी साध्य साधनकी व्याप्ति दिखानी पड़ेगी, उसके सम्बन्धका ज्ञान करनेके लिए अन्य अनुमान मानेंगे तो उसमें भी साध्य साधनकी व्याप्तिका व्यवहार बताना पड़ेगा। तो यों उत्तरोत्तर इसी तरह मानते चले जायें तो कहीं भी विराम न होगा और न प्रकृत अनुमानकी बात सिद्ध हो सकेगी। यह बात पहिली ही कारिकाओं में सिद्ध कर दी गई है। अब यदि शङ्काकार स्वांशमात्रका आलम्बन लेने वाले मिथ्या विकल्पोंके द्वारा प्रकृत तत्त्वकी व्यवस्था बनाये अर्थात् वासनाके निमित्तसे जो सामान्याकार प्रतिभासमें आता है उसे माना है, मिथ्या विकल्प, वही हुआ स्वांश अर्थात् मैं हूं इस प्रकारका जो बोध है वह एक विज्ञानका अंश है तो उस स्वांश मात्रका आलम्बन लेने वाले इन मिथ्या विकल्पोंके द्वारा मैं हूं इस प्रकारकी बुद्धिके द्वारा क्षणिकत्व आदिककी व्यवस्था बनायें तो देखिये! बाह्य पदार्थोंमें भी क्षणिकपनेका विरोध न किया जा सकेगा। बाह्य अर्थ भी क्षणिक है उसकी भी व्यवस्था माननी पड़ेगी। तब केवल विज्ञानमात्र ही है यह सिद्धान्त तो कायम न रह सकेगा। लो अब इस माध्यमिक क्षणिकवादियोंके सिद्धान्तमें भी बाह्य पदार्थोंके क्षणिकत्व आदिककी व्यवस्था बन गयी। अब विज्ञानमात्र ही तत्त्व न रहा, क्योंकि बाह्य तत्त्व मानने वाले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

योगाचार और केवल विज्ञानमात्र तत्त्व मानने वाले माध्यमिक इन दोनों प्रकारके बौद्धोंमें कोई विशेषता न रहीं, अर्थात् सर्व समान बात सिद्ध होती है।

अन्तङ्गार्थतैकान्तमें स्वपक्ष सिद्धिकी व परपक्ष दूषणकी अशक्यता— देखिये ! तज्जन्मसे अथवा योग्यतासे विज्ञानोंमें वेद्यका लक्षण यदि व्यवस्थित करते हैं अर्थात् किसी भी प्रकारसे यह विज्ञानमात्र अद्वैततत्त्व वेद्य होता है तो जब इसको वेद्य मान लिया तो क्षणिकत्व और स्वसम्वेद्यपना और नाना संतानपना भी बन गया। देख लीजिए कि यह प्रकृत सम्वेदनोंका क्षणिकत्व आदिक सिद्ध करना अनुमान ज्ञान आदिकसे ही तो किया गया। वेद्य लक्षणका अभाव हो यह ढग बता करके तो क्षणि-कत्व आदिककी सिद्धि नहीं की गई है अनुमानसे सिद्धि हुई है। तो अब केवल विज्ञान साधारण तत्त्व ही तो न रहा। देखिये ! वेद्यका लक्षण या ज्ञानके द्वारा जो वेदा जाय इस प्रकारका लक्षण वह दोषरहित नहीं सिद्ध होता। विज्ञानवादियोंके द्वारा वेद्यके तज्जन्य ताद्रूप्य आदिकके अनेकान्तपनेका दोष बताया गया है, और इन्हीं सर्व बातोंका दोष बताकर ही तो विज्ञानवादी केवल विज्ञानमात्र तत्त्वकी व्यवस्था कर सकेंगे। सम्वेदनके क्षणिकत्वकी सिद्धि करनेमें जैसे अनुमान बनता है उसी प्रकार सम्वेदन क्षणिक है सत्त्व होनेसे यह अनुमान बना तब उस वेद्यलक्षणकी सम्भावना हुई तो अन्य बाह्य अर्थमें वेद्य लक्षणकी सम्भवता नहीं है यह बात नहीं कह सकते, क्योंकि अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग तत्त्वमें केवल एक अन्तरङ्ग तत्त्व ही है, बहिरङ्ग नहीं है, ऐसा नियम करने वाला कोई वचन नहीं है। स्ववचनका साधन करना, हर पक्षका दूषण देना यह प्रमाणके बिना नहीं हो सकता। तो जब स्वपक्षकी सिद्धि करने चलेंगे शङ्काकार और परपक्षकी असिद्धि करने चलेगा शङ्काकार तो कोई प्रत्यक्ष अथवा अनु-मान किसी भी ढंगसे याने स्वपक्षका तो वह भूषण बन जाय, स्वपक्षकी तो साधना करने वाला बने प्रमाण और परपक्षके लिए दूषण बने अर्थात् परपक्षका निराकरण करसके इस ढंगसे किसी भी प्रमाणान्तरसे कोई सत्य ज्ञान मानना ही पड़ेगा अन्यथा सम्वेदन अथवा बाह्य अर्थ सभीका विभ्रम असिद्ध हो जायगा अर्थात् केवल विज्ञानमात्र ही तत्त्व है बाह्य अर्थ नहीं, सम्वेदनके सिवाय जितने भी बाह्य अर्थ हैं यह भ्रम है यह बात नहीं सिद्ध हो सकती।

अन्तरङ्गार्थतैकान्तमें विज्ञानमात्र तत्त्वकी स्वतः व परतः किसी भी प्रकार सिद्धिकी अशक्यता— यहाँ शङ्काकार कहता है कि कोई विज्ञान मात्र तत्त्व किसी प्रकार ज्ञानात्मकताके द्वारा किसी भी उपायसे जो भी सत्य प्रतिभासन हो वह तो माना ही गया है, क्योंकि ऐसा वचन है कि स्वरूपकी स्वतः ही गति होती है, सम्वेदनमें जो ज्ञानका स्वरूप है वह स्वतः ही जाना जाता है। सम्वेदनका अर्थ है ज्ञान विज्ञानमात्र तत्त्वका ज्ञान कैसे हो इसके लिए अन्यकी अपेक्षा नहीं करनी होती। उसका ज्ञान स्वतः ही हो जाता है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह शङ्का यों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

युक्त नहीं है कि स्वरूपमें तो वेद्य वेदक लक्षण मानने ही पड़े अर्थात् वह विज्ञानमात्र स्वरूप वेदक भी है, जानने वाला भी है और वेद्य भी है, वह जाना जाता भी है। यों वेद्य वेदक लक्षण स्वरूपमें न माना जायगा तो ज्ञान स्वरूपका बोध स्वतः ही होता है यह बात घटित न हो सकेगी। जैसे कि ब्रह्माद्वैतवादियोंके सिद्धान्तमें दूषण दिया जाता है, केवल वही ब्रह्माद्वैत है पुरुषाद्वैत है तो वहाँ वेद्य वेदक लक्षणका द्वैत ही न बन सकेगा ? यही आपत्ति इन विज्ञानवादियोंके यहाँ भी आती है। विज्ञानमात्र तत्त्व माननेपर उस विज्ञानका भी ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञानमात्र ही तत्त्व माना है, वेद्य भाव वेदक भाव ऐसा द्वैत न घटित कर सकेंगे। अन्यथा अद्वैत न रहेगा। तो वहाँ भी ज्ञान नहीं बन सकता।

ग्राह्याकार ग्राहकाकारको भी शंकाकार द्वारा भ्रम बताये जानेका मिथ्यापन— उक्त प्रकरणसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जो विज्ञानवादियोंने यह कहा है कि ग्राह्याकार और ग्राहकाकार ये सब भी भ्रम हैं। जैसे स्वप्नमें या इन्द्रजालके प्रसंगमें जो कुछ ज्ञान होता है वह भ्रान्त ज्ञान है इसी प्रकार जो कुछ भी ग्राह्याकार ग्राहकाकाररूपसे प्रत्यक्ष आदिकरूपसे ज्ञान हो रहा है वह सब भ्रम है ऐसा विज्ञानवादियोंका कहना निराकृत हो जाता है। भला वे यह ही बतलायें कि जिस अनुमानसे ये विज्ञानवादी इन सब आकारोंको भ्रान्त सिद्ध कर रहे हैं तो भ्रान्तपना और प्रकृत अनुमानका ज्ञान इन दोनोंमें विभ्रम है या नहीं ? अगर विभ्रम है तो सब कुछ भ्रान्त है यह भी भ्रम हो गया। तो अब सब भ्रान्त न रहे, वास्तविक हो गए और यदि कहें कि भ्रान्तत्त्व और प्रकृत अनुमानका ज्ञान ये दोनों अभ्रान्त हैं तो लो यहाँ ही हेतुका व्यभिचार हो गया। जो इस बात पर तुले हुए थे ये विज्ञानवादी कि ग्राह्याकार ग्राहकाकार आदिक सारे तत्त्व भ्रमरूप हैं सो अब यहाँ भ्रान्तपनेको और प्रकृत अनुमान ज्ञानको तो भ्रान्त नहीं मान रहे फिर सब कुछ भ्रान्ति है यह प्रतिज्ञा रही ? इस प्रकार जो यह बोध हो रहा है कि यह ग्राह्याकार है यह ग्राहकाकार है तो यह विषय ज्ञानमें प्रतिभासित होता है और यह ज्ञान उन विषयोंका प्रतिभास करने वाला है, इस तरह जो ये दो आकार विदित हो रहे हैं यह भ्रान्त है कि अभ्रान्त याने विज्ञान ही तो ग्रहणमें आ रहा, विज्ञान ही ग्रहण कर रहा, जिसे इन शब्दोंमें कहा है शङ्काकारने कि स्वरूपका परिचय स्वतः ही होता है। तो यहाँ ग्राह्याकार और ग्राहकाकार जो हो रहे हैं, जिनसे स्वरूप परिज्ञानकी बात निभा रहे हैं ये दोनों भ्रान्त हैं कि अभ्रान्त ? यदि भ्रान्त हैं तो ज्ञानने ज्ञानके अपने स्वरूपको भी नहीं जान पाया और जाने तो वह भी भ्रान्त है। यदि कहो कि ग्राह्याकार ग्राहकाकार अभ्रान्त है तो लो इसीसे ही हेतुमें व्यभिचार दोष आता है। यह जो हेतु बनाया जा सकता था शङ्काकार द्वारा कि सर्व कुछ भ्रान्त है ग्राह्याकार होनेसे तो अब यहाँ देखो ग्राह्य ग्राहकाकाकारको अभ्रान्त मान लिया तो अब कहाँ रही सब कुछ भ्रान्त मानतेकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रतिज्ञा ? तो इन सबको अभ्रान्त भी न कह सके और भ्रान्त भी न कह सके। यदि ग्राह्याकार ग्राहकाकार ये भ्रान्त बन जायें जिससे कि विज्ञानवादी विज्ञान स्वरूपका स्वतः परिचय कराना चाहता था वही भ्रान्त बन गया तब इस ही अनुमानसे सबकी भ्रान्तता सिद्ध होगी। और जब सब कुछ भ्रान्त सिद्ध हो गया तब साध्य साधनका ज्ञान होना असम्भव हो गया। जैसे कि उनकी व्याप्तिका ज्ञान असम्भव हो गया है। साध्य साधनकी व्याप्तिका विज्ञान नहीं किया जा सकता है इसी प्रकार यहाँ भी व्याप्ति न बनी, साध्य साधन न बना तो इष्ट तत्त्वकी सिद्धि नहीं कर सकते। और यदि व्याप्ति बना लेते हैं तब जो सर्व तत्त्वोंका भ्रम सिद्ध करना चाहते हैं विज्ञानवादी वह सिद्ध न हो सकेगा।

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञाहेतुदोषतः ॥८०॥

साध्यसाधन प्रयोग द्वारा विज्ञानमात्रकी सिद्धि करनेपर प्रतिज्ञाभङ्ग व हेतुदोषका प्रसङ्ग—विज्ञानवादी यदि ऐसा कहें कि साध्य साधनका ज्ञान भी क्या है ? केवल विज्ञानमात्र है। मात्रज्ञानको छोड़कर वह भी कुछ चीज नहीं है। तब देखिये कि न तो साध्य बना और न कोई हेतु बन सका। न दृष्टान्त आदिक बन सके। तब प्रकृत इष्ट बात भी विज्ञानवादी सिद्ध कैसे कर सकेंगे ? और, यदि करना चाहेंगे तो उनकी प्रतिज्ञामें दोष आ जायगा और हेतुमें दोष आ जायगा। प्रतिज्ञादोष तो स्ववचन विरुद्धकी बातसे स्पष्ट है जो लोग साध्य साधनके ज्ञानको केवल विज्ञप्तिमात्र कह रहे हों अर्थात् ये भी कुछ अलग-अलग नहीं है कि यह साध्य है यह साधन है। वह सब भी ज्ञानमात्र है तो तुम्हारा यह प्रतिज्ञा दोष स्व-वचन विरुद्ध स्पष्ट ही आ रहा है। ये विज्ञानवादी नील पदार्थ और नील ज्ञान इन में अभेद सिद्ध कर रहे हैं अर्थात् नील पदार्थ अपना सत्त्व अलग रहता हो और नील ज्ञान अपना सत्त्व अलग रखता हो ऐसी बात नहीं है, उनमें अभेद है। वे दोनों एक हैं, क्योंकि दोनों एक साथ पाये जा रहे हैं। जैसे किसीको दो चन्द्रमाओंके दर्शन हो जायें तो वहां दो चन्द्र हैं तो नहीं, एक ही हैं। क्यों नहीं हैं दो चन्द्र कि उनका एक साथ पाया जाना देखा गया है। तो जैसे दो चन्द्रकी उपलब्धि एक साथ है इस कारण वहां कल्पनामें दो नहीं हैं, किन्तु एक है इसी प्रकार नील आदिक पदार्थ और तद्विषयक ज्ञान ये कोई दो नहीं हैं, एक ही है, विज्ञानमात्र है क्योंकि इनका एक साथ उपलम्भ पाया जा रहा है। इस प्रकारका मंतव्य बनाकर ये विज्ञानवादी पदार्थ और ज्ञानमें एक साथ दर्शन और उपालम्भ बताकर एकत्वके एकान्तको साध रहे हैं तो मात्र ज्ञानमात्र ही तत्त्व है ऐसे एकान्तकी सिद्धि करना चाह रहे हैं। तो अब बतलाओ कि कैसे नहीं स्ववचनका विरोध होगा ? खुद ही तो धर्म धर्मीके भेदक,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वचन कह रहे हैं और हेतु दृष्टान्तका भेद बता रहे हैं। तो अद्वैत वचनके द्वारा कह रहे हैं तो उन वचनोंका तो यों ज्ञानाद्वैतके वचनका साध्य और धर्मादिकका भेद बताना यह विरुद्ध पड़ता है।

प्रमेयोंका निषेध करके ज्ञानमात्रके व्यवस्थापनमें स्ववचन विरोध--इस परिच्छेदमें यह प्रकरण चल रहा है कि एक दार्शनिक कहता है कि लोक केवल एक विज्ञानमात्र है। ज्ञान तत्त्वके सिवाय बाह्य अन्य कुछ है ही नहीं। जैसे कि लोगोंको घट, पट, मकान, पुरुष पशु पक्षी आदिक दिखते हैं सो यह सब भ्रम है। है सब केवल एक ज्ञानमात्र। तब दूसरा दार्शनिक कहता है कि सब कुछ यह बाह्य पदार्थमात्र ही है। इन दो पक्षोंमेंसे पहिले एकान्तकी मीमांसा चल रही है। विज्ञान मात्र माननेपर उस विज्ञानमात्रकी सिद्धि कैसे हुई। इसके लिये अनुमान प्रयोगकी आवश्यकता हुई। उस आवश्यकताके प्रसगमें यहां यह कहा जा रहा कि देखो अपने ही मुखसे साध्य है साधन है, हेतु है, दृष्टान्त है आदिक भेदरूप वचन तो बोल रहे हो और सिद्ध करना यह चाहते हो कि केवल एक विज्ञानमात्र ही है। तो ज्ञानाद्वैत की बात साध्य साधन हेतु दृष्टान्त आदिकके भेदसे खण्डित हो जाता है। यदि यह कहे शङ्काकार कि नील पीत आदिक पदार्थोंका वचन और नीलज्ञान इनमें भेद है इसी प्रकार साध्य साधन हेतु दृष्टान्त आदिकका भेद है तब एकत्वकी साधना करने की वार्ता खण्डित हो जाती है और यदि एकत्वकी रटन अब भी लगाया तो नील पीत आदिक पदार्थोंका भेद नहीं सिद्ध होता उससे फिर विरोध है। इस प्रकार अपने अभेदरूप औप भेदरूप दोनों ही वचनोंके विरोधसे डरता हुआ कोई अपने ही वचनका अभाव अपने ही वचनसे दिखाये तो भला कौन कहेगा कि यह पुरुष स्वस्थ है उन्मत्त नहीं है ? जैसे कोई यह कहे कि मैं सदा मौनव्रती हूं तो यह कहना जैसे स्ववचन विरुद्ध है उसी प्रकार विज्ञानवादका अद्वैत कहना और उसमें प्रतिनियत होते हैं सर्व पदार्थ, उनकी चर्चा करना यह भी स्ववचन विरुद्ध है और भी सुनो! विज्ञान-वादियोंके यहाँ विशेष्य और विशेषणपना सिद्ध नहीं होता है। और यों प्रतिज्ञा दोष होता है। नील पदार्थ और नील पदार्थका ज्ञान यह हुआ विशेष्य है और उनमें हैं अभेद तो पदार्थ और पदार्थके ज्ञानमें अभेद हैं। यही तो विज्ञानवादी कहता है। तो पदार्थ और पदार्थका ज्ञान विशेष्य हुआ और उनमें अभेद बताना यह विशेषण हुआ ऐसा तो ये विज्ञानवादी स्वयं नहीं मानते। तो जो केवल यही बात मानते कि लोकमें सिर्फ ज्ञान ज्ञान ही तत्त्व है और दिखने वाले ये सारे पदार्थ भ्रम हैं, इनका अस्तित्व नहीं है ऐसा मानने वालोंके कुछ भी तत्त्व सिद्ध नही हो सकता है।

पराभ्युपगमके सहारे अनभिमत उपायसे अभिमतसाधनकी असंभवता

यदि शङ्काकार यह कहे कि दूसरे लोगोंने तो माना है विशेष्य विशेषण तो उनके माने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गयेसे हम प्रसङ्गकी सिद्धि बना लेंगे, फिर कोई दोष नहीं है। जैसे हम विज्ञानवादी ज्ञानको छोड़कर अन्य कुछ नहीं मानते और फिर हमें विशेष्य विशेषण साध्य साधन आदिक बतानेकी आवश्यकता हुई तो यह सब भेदकी बात बताना दूसरेके मंतव्यसे हो जायगा। तब तो कोई दोष नहीं है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि दूसरेकी मानी हुई बात तो असिद्ध है दूसरेके लिये। जैसे यहां विज्ञानवादी बौद्ध जो कुछ मानते हैं सो जो उनके सिद्धान्तमें है सो ही तो मानेंगे। अब कोई शासन जैन आदि की मान्यतासे सिद्ध करके अपना काम बनाना चाहे तो उनकी बात तो इनको सिद्ध है ही नहीं, तो उनके मानने मात्रसे तो प्रसंगकी सिद्धि नहीं बन सकती। प्रसंगका साधन कब बनता है कि साधन और साध्यका व्याप्य व्यापक भाव सिद्ध होनेपर फिर दूसरोंके द्वारा माने गए व्याप्यका मानना हो, उससे फिर कोई व्यापकके माननेकी सिद्धि करे याने व्याप्यका मानना व्यापकके माने बिना नहीं होता तो व्यापकका मानना जहां दिखाया तब तो प्रसंग साधन है और यह बात केवल ज्ञानमात्र तत्त्व मानने वालोंके सम्भव नहीं है। क्योंकि इनमें विरोध है। अनेक बातें स्वीकार करनी पड़ेंगी तब ज्ञानमात्र ही है सब कुछ इसकी सिद्धि करनेका कुछ प्रयास बन सकता है।

सर्वज्ञ विसंवादकोंके यहां पराभ्युपगमसे स्वेष्ट साधनकी अशक्यता— यहाँ शंकाकार कहता है कि स्याद्वादियोंके यहाँ भी तो प्रतिज्ञा हेतु दोषकी बात कहना न बन सकेगा, विज्ञानवादियोंके प्रति। क्योंकि विज्ञानवादियोंकी दूसरी कुछ चीज मानी ही नहीं गई है। वह दोष माना ही नहीं गया है। तो दूसरेके मानने मात्रसे जब दूसरेकी सिद्धि नहीं है तो जैनियोंके मानने मात्रसे बौद्धोंको क्यों मानना पड़ेगा? विज्ञानवादी तो ज्ञानमात्रको छोड़कर अन्य कुछ नहीं मानते, गुण भी नहीं मानते, दोष भी नहीं मानते। दोष गुण आदिकका होना तो अपने माननेसे सिद्ध होगा, या जो लोग दोष गुण मानते हैं वह उनके माननेसे ही बनेगा। ज्ञानाद्वैतवादियोंके ज्ञानमात्र साधनसे पहिले प्रतीतिके अनुसार वस्तुकी व्यवस्था की है और जैन आदिकने दोषके होनेकी व्यवस्था बनायी है। ऐसा यदि कोई समाधान दे तो फिर प्रतीतिके ही अनुसार वस्तुकी व्यवस्था होती है यह बात दिखाकर विज्ञानवादी बौद्धोंके लिए क्यों न वह समाधान बनेगा? जैसे कि जैन आदिकके लिए गुण दोष की सत्ता है तो हम सौगतोंके लिए गुण दोदकी सत्ता है तो हम सौगतोंके लिए ज्ञान मात्रकी सत्ता बन जाय। विचारसे पहिले तो सभी वादियोंके यहाँ वे अविचारतः रमणीय रूपसे अर्थात् बिना विचारे ही सुन्दर जचे इस रूपसे प्रतीतिके अनुसार साध्य साधन व्यवहारकी प्रवृत्ति होती है, अन्यथा तो किसी भी सम्बन्धमें विचार ही नहीं बन सकता है। और जब विज्ञानमात्र सिद्ध हो गया तब फिर कोई भी साध्य साधन व्यवहारको फैला नहीं सकता। और विज्ञप्तिमात्र सिद्ध होनेपर जैन आदिकको उस सम्बन्धमें दोष प्रकट करनेका अवकाश भी नहीं हो सकता। इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकार विज्ञानवादी स्याद्वादियोंके प्रति दूषण दे रहे हैं। अब इस उपालम्भके समाधानमें कहते है कि इस तरहका उपालम्भ देने वाले दार्शनिक विचारमें चतुरचित्त वाले नहीं हैं। कुछ भी निर्णीत बातका आश्रय करके अन्य अनिर्णीत रूपमें जो कि उस निर्णीतका अविनाभावी हो उसमें विचार चलता है, पर जिसके लिए सभी पदार्थों में विवाद है, साध्य साधन आदिक सभीमें संदेह है उसका तो कहीं भी विचार चल ही नहीं सकता। विचार तो उनके बना करता है जो किसी एक निर्णयमें तो हों। फिर उसके आधारसे अन्य जिसका निर्णय न बन सका ऐसे विषयोंमें विचार चले। पर जिसका निर्णय ही कुछ न हो, सभी साध्य साधन आदिकमें विवाद है तो उनका तो कहीं भी विचार नहीं बन सकता। इस तरह विचारसे पहिले भी अन्य विचारसे निर्णीत किए गए विषयमें ही साध्य साधनका व्यवहार बनता है और साध्य साधन आदिकके गुण और दोषका स्वभाव है वह भी निश्चित हो जाता है। यहाँ कोई ऐसा न सोचे कि जब अन्य विचारसे निर्णय बना तो अनवस्था दोष होगा। सो अनवस्था दोष नहीं आता, क्योंकि संसार तो अनादि है। कहीं किसी पुरुषकी रागादि न रहने से आकांक्षा दूर हो ही जाती है तो विचारान्तरकी अपेक्षा नहीं रखी जाती। कोई मनुष्य किसी भी विषयमें विचार चला रहा है तो वह चीज अभी निर्णीत नहीं हुई। पूर्णरूपसे सामने नहीं है तभी तो विचार चलता है और उन विचारोंकी फिर परम्परा बनती है, तो यह परम्परा बनती ही जाय और प्रकृत बातमें कुछ प्रवृत्ति न बने ऐसी अवस्था नहीं कह सकते, क्योंकि विचार चलता ही रहता है और जहाँ फिर राग नहीं रहता विचार रुक जाया करता है तो सिद्ध यही है कि कुछ निर्णय तो हो पहिले फिर उसके माध्यमसे उन पदार्थोंका भी विचार चले जिसके सम्बन्धमें कुछ भी निर्णय न हुआ हो। इससे स्याद्वादियोंका विज्ञानवादीके प्रति प्रतिज्ञादोष का प्रकट करना और हेतुके दोषको प्रकट करना यह युक्त ही है अर्थात् स्याद्वादीजनों ने विज्ञानवादियोंके प्रति जो प्रतिज्ञा दोषकी और हेतु दोषकी बात प्रकट की है वह युक्त ही है।

पृथगनुपलम्भ व भेदाभावमें सम्बन्ध व्याप्ति सिद्ध न किये जा सकने की स्थितिमें विज्ञानमात्रकी सिद्धिकी अशक्यता—यह विज्ञानवादी शंकाकार पदार्थमें और पदार्थ विषयक ज्ञानमें जो भेदका अभाव सिद्ध कर रहा है वह इस ही बलपर तो कह रहा है कि वे दो पृथक उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। लेकिन यह बात असिद्ध है। सम्बन्धकी जब तक सिद्धि न हो पृथक पाये जानेका अभाव और भेदका अभाव इन दोनों अभावोंमें जब तक सम्बन्ध सिद्ध न हो तब तक भेदका अभाव है यह सिद्ध नहीं किया जा सकता। याने पदार्थ और पदार्थ विषयक ज्ञान इनको पृथक कहीं दर्शन नहीं है, अतएव भेदका अभाव है। यों जो कह रहे हैं तो क्या इन दोनों में व्याप्ति है कि पृथक कोई चीज न पायी जाय तो वहाँ भेदका अभाव मानना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहिए। ये तो गायोंके सींगकी तरह असत् पदार्थ हैं, उनमें क्या सम्बन्ध सिद्ध होगा ? जैसे धुवाँ और अग्निके जब कार्यकारणभाव सम्बन्ध सिद्ध है कि अग्नि तो कारण है धुवाँ कार्य है। अग्निसे ही तो धुवाँकी उत्पत्ति है। तो जब अग्नि और धुवाँमें कार्यकारणभाव सम्बन्ध सिद्ध है तब कारणके अभावमें कार्यका अभाव सिद्ध करना युक्त है। जहाँ अग्नि न हो वहाँ धूम नहीं है यह बात निशंकरूपसे कही जा सकती है। और जैसे सीसमपना और वृक्षपना इन दोनोंमें व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध है। वृक्षपना तो व्यापक है सीसमका वृक्ष यह व्याप्य है। तो यह सीसम है ऐसा कहनेमें यह तो सिद्ध हो ही जाता कि यह वृक्ष है। तो जब इन दोनोंमें व्याप्य व्यापक भाव सिद्ध है तब ही तो व्यापकके अभावमें व्याप्यका अभाव सिद्ध होता है। अर्थात् वृक्ष ही न हो तो सीसम कहाँसे आयगा ? तो कार्य कारणभाव, व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध सिद्ध होनेपर ही एकके अभावसे दूसरेके अभावकी सिद्धि होती है अन्यथा नहीं, इस प्रकार भेदका होना और पृथक चीजका पाया जाना इनका सम्बन्ध कहीं भी सिद्ध नहीं है। तब विरुद्ध होनेसे विज्ञानमात्र मानने वालेके सिद्धान्तमें पृथक चीज को पाये जानेका अभाव भेदके अभावको सिद्ध करे ऐसा नहीं हो सकता। तब विज्ञानवादी जो यह कहता है कि सारा तत्त्व केवल विज्ञान मात्र है। क्योंकि वहाँ सबकी एक साथ उपलब्धि है अथवा पृथक-पृथक किसीकी उपलब्धि नहीं है, यह सिद्धान्त निराकृत हो जाता है। उक्त हेतुवोंसे जब विज्ञानवादकी पुष्टि न हो सकी तब विज्ञानवादी जो यह कहते हैं कि क्रमसे उपलब्धि नहीं है इस कारण पदार्थ और पदार्थके ज्ञानमें अभेद है यह बात भी खण्डित हो जाती है क्योंकि भाव और अभावमें सम्बन्ध सिद्ध नहीं है। अभेदका होना और पृथक् पृथक न पाया जाना इन दोनोंका परस्पर सम्बन्ध असिद्ध है। कोई पूछे कि क्यों असिद्ध है ? भाव और अभावकी समानता क्यों है ? तो सुनो तादात्म्य सम्बन्ध तो अर्थ स्वभावके साथ नियमित होते हैं। तो इन सम्बन्धोंसे भेद सिद्ध नहीं किया जा सकता किन्तु पदार्थका अस्तित्व और स्वभाव निश्चित् किया जाता है। रही अन्यापोहकी बात। जैसे घट कहना तो उसका अर्थ लगाना अघटव्यावृत्ति, तो ऐसा अन्यापोह पदार्थका स्वभाव नहीं है, वह तो तर्क वितर्कसे परखी जाने वाली बात है। अतः एकत्व साध्यके साथ, भावस्वभावके साथ अन्यापोहका सम्बन्ध नहीं जुड़ सकता है। अतः केवल विज्ञानमात्र ही तत्त्व है ऐसा कहना युक्तिहीन है। पदार्थ अनन्त है, विज्ञान भी एक पदार्थ है, वह समस्त ज्ञेयोंके जाननेकी व्यवस्था बनाया करता है।

असहानुपलम्भका अन्यापोहरूप अर्थ करके विज्ञान मात्र तत्त्वकी सिद्धि का विफल प्रयास विज्ञानवादी यहाँ असहानुपलम्भका अन्यापोहरूप अर्थ करके विज्ञानमात्र तत्त्वकी सिद्धि करना चाहते हैं लेकिन यह प्रतिषेध (अन्यापोह) एकान्त सिद्ध भी हो जाय, यद्यपि अन्यापोह अर्थका स्वभावरूप नहीं है इस कारण भाव स्व-

http://sahjanandvarnishastra.org/

भाव एकत्वके साथ अन्यापोह वाले असहानुपलम्भका सम्बन्ध नहीं बनता। कदाचित ऐसा प्रतिषेध एकान्त सिद्ध भी कर लिया जाय तो भी विज्ञानमात्रकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि "पृथक न पाया जाय" इस हेतुसे ज्ञानमात्रकी सिद्धि होती नहीं है। नील पदार्थ और तद्विषयक ज्ञान ये दोनों पृथक नहीं पाये जाते, इसमें विज्ञानमात्र ही है यह कैसे अर्थ लगाया ? कोई यह कह देगा कि नील पदार्थ मात्र ही है तो उसको क्या रोका जा सकेगा ! और यदि विज्ञप्तिकी सिद्धि ही करते हो इस उपायसे तो वह हेतु सिद्ध हो ही जाता है, क्योंकि वहाँ ग्राह्य ग्राहक भाव सिद्ध हो गया। ग्राहक हुआ विज्ञान जिसमें कि ग्राह्य हो गये नीलादिक पदार्थ जो कि जाने गए और इसी प्रकार जैसे कि ज्ञान सिद्ध हुआ तो ग्राह्य अर्थ भी सिद्ध हो गए। वह ग्राह्य है यह ग्राहक है इस तरह पृथक उपलब्धि नहीं है नील पदार्थ और विज्ञानकी, इसमें केवल, विज्ञानकी सिद्धि नहीं की जा सकती।

सहोपलम्भमें प्रयुक्त सह शब्दका "एक" अर्थ करनेपर हेतुकी साध्य-समदोष दूषितता—विज्ञानवादी विज्ञानमात्र तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए यदि यह साधन वचन कहें कि एककी उपलब्धि पायी जाती है इस कारण विज्ञानमात्र है सो यह हेतु भी असिद्ध है, क्योंकि यह हेतु तो साध्यसम हो गया। साध्य भी यहाँ क्या कि विज्ञानमात्र एक ही तत्त्व है और साधन भी यही बना कि सिर्फ एककी उपलब्धि होती है। तो साध्य साधन दोनों समान हो गए तब साध्यकी सिद्धि कैसे होगी? साध्य तो यह बनाया जा रहा है कि नीलादिक पदार्थ और तद् विषयक ज्ञान इनमें एकत्व है और हेतु यह कहा जा रहा कि उनमें एककी उपलब्धि है तो बात तो वही रही। ज्ञानके उस एककी उपलब्धि होनेसे यही तो हेतु के अर्थका व्याख्यान है और सह शब्द जो है वह एकका पर्यायवाची है। जैसे कहा भ्राता और सहोदर तो सहोदरका अर्थ क्या है ? एक ही पेटसे उत्पन्न हुए याने जिस माँके उदरसे एक भाई उत्पन्न हुआ उसी उदरसे दूसरा भाई हुआ तो उसे कहते हैं सहोदर। तो सहका भी अर्थ एक है। तो इस तरह यह साध्यसम हेतु हो गया। जो साध्य सिद्ध करना था वही हेतुमें दिया जा रहा है। जैसे कोई कहे कि इस पर्वतमें अग्नि है अग्नि होनेसे तो क्या यह समीचीन हेतु है ? नहीं है। तो इसी प्रकार एककी उपलब्धि होनेसे एक विज्ञान ही है यह प्रयोग समीचीन नहीं है।

विज्ञानमात्र तत्त्व सिद्ध करनेके लिये प्रयुक्त एकज्ञान ग्राह्यत्व हेतुकी अनैकान्तिकता—अब और भी सुनिये विज्ञानमात्र तत्त्व सिद्ध करनेके लिये यह हेतु बताना कि एक ज्ञानके द्वारा ग्राह्य है इस कारण एक है तो यह हेतु अनेकान्ति दोषसे दूषित है। द्रव्य पर्याय और परमाणु ये सब एक ज्ञानके द्वारा ग्राह्य हैं पर एक तो नहीं हो गए। कथञ्चित इनमें नानापन है। द्रव्य और पर्याय ये एक मतिज्ञानके

http://www.jainkosh.org

द्वारा ग्राह्य है, पर इनमें सर्वथा एकत्व नहीं माना गया है। यह तो है जैनोंके दृष्टांत की बात। अब इन ही माध्यमिक क्षणिकवादियोंकी बात देखो ये लोग मानते हैं कि चक्षु आदिक एक ज्ञानके द्वारा संचित हुए रूपादिक परमाणु ग्राह्य होते हैं और इनके वचन भी हैं ऐसे कि जो संचित ही हैं। जिनका विषय ऐसे ५ विज्ञान स्वरूप होता है तो एक ज्ञानके द्वारा संचित अनेक रूपादिक परमाणु जाने गए हैं लेकिन उन सबमें एकता तो नहीं मानी गई। इस प्रकार उन संचित रूपादिक परमाणुओंके साथ अनेकान्तिक दोष इस साधनमें आते हैं जो साधन अभी बताये हैं कि एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य है। तो विज्ञानमात्र एक तत्त्व है एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य होनेसे इस हेतुमें। अभी दो प्रकारका अनेकांतिक दोष बताया है। अब विज्ञानवादी योगाचारके यहाँ भी यहीं अनेकांतिक दोष देखिये —ये मानते हैं कि एक सुगतज्ञानके द्वारा समस्त ज्ञान परमाणु ग्राह्य हो जाते हैं तो देखिये! सारे ज्ञान परमाणु एक सुगत ज्ञानके द्वारा जाने गए लेकिन वे ज्ञान परमाणु क्या एक बन गए। वे तो नाना ही हैं, इस प्रकार विज्ञान उन विज्ञानवादियोंके साथ यह एक ज्ञान ग्राह्यत्व हेतु अनैकांतिक दोषसे दूषित होता है।

सहोपलम्भका अनन्यवेद्यपना व एकलोभावोपलम्भ अर्थ करनेपर दोषमुक्तिका अभाव—अब यदि शंकाकार यह कहे कि हम तो सहोपलम्भ नियम का अर्थ करते हैं अनन्यवेद्यपना और यह अनुमान प्रयोग बनता है कि नील पदार्थ और नील पदार्थ विषयक ज्ञान इनमें एकता है, क्योंकि अनन्यवेद्य होनेसे। अनन्यवेद्यका अर्थ है नील पदार्थके ज्ञानसे अन्य कुछ भी नहीं है स्व सम्वेदनकी तरह। जैसे स्वसम्वेदन ज्ञान अनन्यवेद्य है, स्वयंके द्वारा ही जाना गया है। वहाँ अन्य कोई दूसरा नहीं है, इसी तरह नील पदार्थ और तद्विषयक ज्ञान इनमें भी एकता है। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा सोचना यों संगत नहीं है कि अन्य लोग जैनादिक जनोंके तहाँ अनन्यवेद्यपना असिद्ध है, क्योंकि नीलज्ञानसे जाना जा रहा है। अतः अनन्य वेद्यपना हेतु देकर भी नीलादिक पदार्थ और नीलज्ञानमें एकता नहीं बतायी जा सकती है। अब शंकाकार कहता है कि सहोपलम्भका यह अर्थ किया जायगा कि एकमेक रूप होनेके ढंगसे उपलब्धि हो रही है। जैसे चित्रज्ञान और चित्रज्ञानाकारमें एकमेक रूपसे उपलब्धि हो रही है और इसीलिए वहाँ चित्रज्ञान और वे नानाकार भिन्न भिन्न रूप से नहीं किए जा सकते। उनमें अशक्य विवेचनपना है। तो इस तरह एकमेक रूपसे उपलब्धि होनेसे नीलादिक पदार्थ और तद्विषयक ज्ञानमें एकता सिद्ध हो जायगी। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह साधन तो असिद्ध है क्योंकि नीलादिक पदार्थ और तद्विषयक ज्ञानमें अशक्य विवेचनता सिद्ध नहीं है। ये स्पष्ट रूपसे भिन्न-भिन्न रूपसे जाने जा रहे हैं। नील पदार्थ विषयक ज्ञान तो अन्तर देशमें जाना जा रहा है वह भीतरमें समझ बुद्धि है और नीलादिक पदार्थ बाह्यदेश रूपसे जाने जा रहे हैं, इस कारण इनमें अशक्य विवेचनता है ये एकमेक रूपसे उपलब्ध होते हैं यह बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

असिद्ध है।

सहोपलम्भका एकदोलम्भ अर्थ करनेपर भी दोषमुक्तिका अभाव—यदि शंकाकार सहोपलम्भकी यह व्याख्या करे कि एक समयकी उपलब्धि होनेसे इसका नाम है सहोपलम्भ। मायने तत्त्व एक समयमें ही पाये जायें उसे कहते हैं सहोपलम्भ हेतुसे एक विज्ञानमात्र तत्त्व सिद्ध करें तो यह प्रयास भी उनका व्यर्थ है, क्योंकि एक समयकी उपलब्धि होनेसे यदि एकता मान ली जाती है तो एक क्षणमें रहने वाले जो अनेक ज्ञान हैं वे भी तो एक साथ ही पाये जा रहे हैं तब वे भी एक बन बैठे। तो एक साथ पाए जाने वाले अनेक ज्ञानोंमें यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है। क्योंकि वे सब ज्ञान एक ही समयमें उत्पन्न हो रहे ऐसा बराबर समझा जा रहा है। शंकाकारने जो सहोपलम्भ हेतुसे विज्ञानमात्र एक तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए जो दो चन्द्रका दृष्टान्त दिया था और उससे यह सिद्ध करना चाहा था कि जैसे दो चन्द्रका दर्शन भ्रमरूप है, सहोपलम्भ है। एक साथ दो चन्द्र दिख रहे हैं तो वहाँ यह सिद्ध होता है कि दो चन्द्र नहीं हैं, किन्तु एक है इसी तरह नील पदार्थ और तद्विषयक ज्ञान ये एक साथ पाये जा रहे इस कारण ये भी भिन्न भिन्न नहीं हैं किन्तु एक हैं। सो यहां दो चन्द्रका दृष्टान्त देना साध्य साधनसे विकल है अर्थात् इसमें न साध्य पाया जा रहा न साधन पाया जा रहा। जहाँ साध्य और साधन न पाये जायें, वह दृष्टान्त दृष्टान्त ही नहीं हो सकता। यहाँ साध्य तो है भेद सिद्ध करना और साधन बनाया है सहोपलम्भ। तो दो चन्द्र दिख रहे हैं उनमें भेद भी नहीं है और उस प्रकारकी उपलब्धि भी नहीं है। वस्तु स्वरूपमें स्वलक्षण की ये बातें निश्चित होती हैं। पर जो भ्रान्ति हैं, दो चन्द्र हैं, भ्रम हैं उनमें न तथोपलम्भ और न भेद दोनों ही सम्भव नहीं हो सकते। और, यदि दो चन्द्रोंमें अभेद भी सत्य माना जाय और तथोपलम्भ भी सत्य माना जाय तो भ्रम न कहलायगा। फिर यों दो चन्द्र सही ही मानने पड़ेंगे।

एक साथ उपलब्धि व अनुपलब्धिकी भी अभेदसाध्यके साथ व्याप्ति का अनियम—शङ्काकार कहता है कि असहानुपलम्भ अर्थात् एक साथ नहीं पाये जा रहे इस हेतुसे अभेदमात्र सिद्ध हो जायगा याने भ्रान्त भी साधन हो उस साधनसे भी साध्यरूप अभेद सिद्ध हो जायगा, क्योंकि अभावमें दोनों अभावोंका होना सम्भव नहीं है, यहाँ प्राकृतिक अभाव है दो चन्द्र। दो चन्द्र तो नहीं हैं इसलिए वह अभावरूप है और उसमें सहानुपलम्भका अभाव और अभेदका अभाव ये साध्य साधन भी अभाव रूप हैं। तो अभावके अभावका होना सम्भव नहीं है, इस कारण दृष्टान्तको साध्य और साधनसे रहित बताना युक्त नहीं है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह यदि भ्रान्तिको भी साध्य साधन वाला बना लोगे तो अर्थके स्वभाव का कभी परिचय ही न हो सकेगा। सभी विज्ञान स्वलक्षण हैं, उनके क्षणक्षयका, विविक्त जितनी भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संततिका भ्रम है उसका भी अनुमान ज्ञानमें परिचय हो जायगा फिर तो सभी विज्ञान केवल एकमात्र हो जायेंगे। उनकी सिद्धि अगर अन्यापोहके द्वारा सिद्ध करना चाहोगे तो अन्यापोहमात्र हेतुसे तो अन्य पोह ही सिद्ध होगा। उससे अर्थस्वभावका ज्ञान नहीं हो सकता। और भी देखिये ! एक साथ उपलब्धि हो रही है, यही तो इस हेतुका अर्थ कर रहे हो याने दो चन्द्र एक साथ दिख रहे, ऐसा ही तो दृष्टान्त दे रहे और ऐसी ही प्रकृत सिद्धि करना चाहते हो तो यहाँ हेतु असिद्ध है। जैसे कभी एक पदार्थ में जिन्होंने दृष्टि लगाई है ऐसे अनेक पुरुष बैठे हों, जैसे कि राजदरबारमें बहुत दर्शक जन हैं - राजा भी बैठा है और कोई एक नर्तकी नृत्य कर रही है तो सभी लोग उस नर्तकीपर दृष्टि लगाये हैं। अथवा जो दूसरेके चित्तकी बात जानने वाले हों वे सब अर्थात् एक पदार्थकी ओर जिन्होंने दृष्टि लगाई है ऐसे पुरुष एक अर्थमें लगी हुई पुरुषबुद्धिको और दूसरेके चित्तमें आये हुए अर्थको तो नहीं जानते हैं। तब हेतु असिद्ध हो गया क्योंकि वहाँ व्याप्ति न बन सकी। एक साथ उपलब्धि हो रही है फिर भी वे एक नहीं हैं अनेक हैं, और स्पष्ट बात तो यह है कि एक साथ उपलब्धि भी बनी रहे और भेद भी बना रहे उसका निषेध नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थकी उत्पत्ति अपने अपने कारणोंके नियमसे होती हैं। सारे पदार्थ एक साथ पाये जा रहे किन्तु हैं वे अपने स्वरूपमें भिन्न-भिन्न। सबका उपादान निज निजका अलग-अलग है। तो एक साथ पाये जायें इनसे पदार्थोंमें अभेद सिद्ध करना यह नहीं बनता, क्योंकि एक साथ पाये जानेका अभेदके साथ व्याप्ति नहीं है। तो यह हेतु संदिग्ध व्यतिरेक है अर्थात् यहाँ व्यतिरेक व्याप्ति निश्चित नहीं, किन्तु उसमें संदेह है। एक साथ पाये जानेसे कहीं अभेद भी सिद्ध हो सकता है पर प्रायः भेद ही सिद्ध हो रहा है।

विज्ञानातिरिक्त पदार्थका उपयोग करते हुए भी अतिरिक्त अर्थके न माननेका आश्चर्य – यह एकान्त विज्ञानवादी जिसकी दृष्टि विपरीत हो रही दूसरो को समझानेके लिए शास्त्रको रचता हुआ या परमार्थसे शास्त्रको जानता हुआ उन दोनोंको और उस तत्त्वज्ञानको निराकृत करता है कि यह कुछ नहीं है, विज्ञानमात्रकी बात कह रहा और शास्त्र समझ रहा, दूसरेको समझा रहा, अनेकतत्त्वज्ञान कर रहा और फिर भी अन्य चीज कुछ नहीं मानता तो कितने आश्चर्यकी बात है ?

विज्ञानमात्रके आग्रहमें कहे गये वचनोंकी निग्रहार्हता – विज्ञानमात्रके आग्रहमें उत्पन्न वचन हैं याने अपने इष्टको सिद्ध कर सकने लायक वचन नहीं हैं, और अपने पक्षसे विपरीत पक्षमें दोष भी नहीं दे सकते, इस कारण यह तो निग्रहके योग्य है। इसका वचन न कुछ सिद्धि कर सकता है न किसीकी बातमें दूषण दे सकता है, क्योंकि यह तो विज्ञानमात्र सिद्ध करनेपर तुला हुआ है। तो इसका कोई भी ज्ञान समीचीन नहीं है, इस कारण इसकी दृष्टि मिथ्या ही है। शङ्काकार कहता है कि यह

http://sahjanandvarnishastra.org/

कैसे कह दिया कि विज्ञानवादियोंके यहाँ कोई भी सम्वेदन सच्चा नहीं है। देखिये! ज्ञानाद्वैत तो सच्चा है, केवल एक विज्ञानमात्र है, अन्य बाह्य पदार्थ कुछ नहीं है। इस प्रकारका जो सम्वेदन है वह तो सही बनता है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि विज्ञान-वादियोंका विज्ञानाद्वैत समीचीन नहीं है। जब उस विज्ञानाद्वैतसे यह प्रश्न किया जायगा कि उसकी जानकारी स्वतः होती है या परसे होती है ? तो दोनों ही प्रकारसे जानकारी सम्भव न बनेगी। जैसे एक ब्रह्माद्वैतवादियोंका भी यह प्रश्न जब किया जाता है कि उसका परिचय स्वतः है या परतः ? तो वहाँ ब्रह्माद्वैतका सिद्धान्त निरा-कृत हो जाता है। इसी प्रकार विज्ञानाद्वैतमें भी पूछा कि जानकारी स्वतः है या परतः ? किसी प्रकार प्रतिपत्ति सम्भव नहीं है। बात वहाँ यह है कि जो साँश विज्ञान है अर्थात् अंशसहित जो विज्ञान है वह कथञ्चित् क्षणिक है ऐसी प्रतीति उसके सम्बन्ध में है। परन्तु जो निरंश विज्ञान है उसका सम्वेदन किसी भी प्रकार नहीं होता और सम्वेदनके अनुसार ही प्रतीति मानना चाहिए ऐसी प्रतीतिके अनुसार जब निरीक्षण करते हैं तो विज्ञानवादियोंका यह विज्ञानाद्वैत मिथ्या सिद्ध होता है।

विज्ञानमात्रकी मीमांसाका प्रकृत अन्तिम उपसंहार—विज्ञानाद्वैतवादियों का यह विज्ञान अनन्त है और वह चित्तक्षणरूप है याने जो विचार उठा, जो ज्ञान बना ऐसा एक एक निरंश निरंशज्ञान विज्ञान कहलाता है तो विज्ञानवादियोंने भी निरंशज्ञान माना, जिस ज्ञानके और अंश नहीं किए जा सकते। अंश होते होते ऐसा परम अंश जिसका आगे अंश न हो, यों है विज्ञान क्षण विज्ञानवादियोंका तत्त्व और ब्रह्माद्वैतवादी भी ब्रह्मको ज्ञानस्वरूप मानते हैं। वे ऐसा निरंश मानते हैं कि सर्वलोक में एक ही विज्ञान फैला हुआ है। वह भी निरंश है, उसका अवसर नहीं मानते। तो जिस निरंश व्यापक एक ज्ञानकी स्वतः प्रतिपत्ति हो तो ग्राह्याकार ग्राहकाकारका भेद मानना ही होगा। परतः प्रतिपत्ति हो तो वह पर मानना ही होगा, फिर अद्वैत कहाँ रहा ? इसी प्रकार विज्ञानवादियोंके विज्ञानकी स्वतः प्रतिपत्ति है तो वहां ग्राह्याकार और ग्राहकाकार मानना ही होगा। यदि परतः प्रतिपत्ति है, विज्ञानवादीने जो पर माना है वह द्वैत हो गया, अद्वैत कहां रहा ? तो इस प्रकार अन्तरङ्ग अर्थका एकान्त करनेपर केवल ज्ञान ज्ञानमात्र ही है, ऐसा एकान्त करनेपर अनुमान आगम आदिक जो भले उपाय तत्त्व हैं वे सम्भव नहीं हो सकते।

बहिरङ्गार्थतैकान्ते प्रमाणाभास निह्नवात् ।
सर्वेषां कार्यसिद्धिः स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम् ॥ ८१ ॥

बहिरङ्गार्थताका एकान्त करनेपर प्रमाणाभासका लोप हो जानेसे विरुद्धार्थ कथनकी भी सिद्धिका प्रसङ्ग—बहिरङ्ग पदार्थका एकान्त माननेपर प्रमाणाभास सिद्ध न होगा और तब सभी दार्शनिकके या सभी पदार्थोंके अपने अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कार्यकी सिद्धि हो जायगी। चाहे कोई विरुद्ध अर्थ भी कह रहे हों, पर जब अन्तरङ्ग अर्थ नहीं मानते, केवल बहिरङ्ग अर्थ याने ये सब बाह्य पदार्थ ही जाने जाते हैं तब प्रमाणाभास रहेगा नहीं, सभी प्रमाण हो जायेंगे। तो सबकी अपने अपने इष्टकी सिद्धि हो जायगी। पूर्व कारिकामें बताया गया था कि अन्तरङ्ग अर्थ अर्थात् केवल विज्ञानमात्र तत्त्वका एकान्त करनेपर याने विज्ञानके अतिरिक्त अन्य कुछ न माननेपर विज्ञानकी सिद्धि नहीं की जा सकती। और है भी नहीं ऐसा कि पदार्थोंमें कोई तत्त्व न हो। अब इस कारिकामें कह रहे हैं कि जो लोग ज्ञान प्रमाणको नहीं मानते केवल वहिरङ्ग अर्थज्ञानको छोड़कर अन्य पदार्थ यही मात्र मानते तो उनके यहां प्रमाणाभास बननेसे सभीके कार्योंकी सिद्धि हो जायगी। फिर यह निर्णय देना कठिन है कि यह बात सही है, यह बात गलत है।

वहिरङ्गार्थतावादपक्षका वर्णन-- अब यहाँ बहिरङ्ग अर्थके एकान्त मानने वाले समर्थन करते हैं कि जो कुछ भी ज्ञान हो रहा है वह सब साक्षात् अथवा परम्परा से बाह्यपदार्थसे प्रतिबद्ध ही है। जैसे किसीको अग्निका प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा है तो वह प्रत्यक्ष ज्ञान अग्नि पदार्थसे प्रतिबद्ध है। प्रतिबद्धका अर्थ है विषयभूत। अथवा वही विषय है जो ज्ञानने जाना। और, जैसे अग्निका किसीने अनुमानसे ज्ञान किया इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो वहाँ भी जो अग्निका परोक्षज्ञान हुआ वह भी अग्नि पदार्थसे प्रतिबद्ध है। स्वप्नमें कोई चीज दिखती है तो स्वप्नमें भी जो विचार चलता है, ज्ञान चलता है वह भी बाह्य पदार्थसे प्रतिबद्ध है। सभी ज्ञान विषयाकारसे प्रतिभासित होते हैं। कोई ज्ञान स्वतः अपना क्या स्वरूप रखेगा? बाह्य पदार्थोंका आकाररूपसे वह ज्ञान बनता है उससे यदि शून्य है ज्ञान सो और स्वयंज्ञानमें क्या रखा है? ज्ञानका जो निर्माण हुआ, ज्ञानका जो आकार बना, विकल्प बना वह बाह्य पदार्थ विषयोंके आकाररूप बना। तब वास्तविक तो बाह्य पदार्थ हैं ही इसी बातको अनुमान प्रयोगसे समझ लीजिए कि यह विवादापन्न विज्ञान साक्षात् अथवा परम्परासे बाह्य पदार्थोंसे प्रतिबद्ध है, क्योंकि यहाँ पदार्थोंके आकारका ही प्रतिभास है। जैसे अग्निका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ तो उस प्रत्यक्षज्ञानमें भी अग्नि ही आयी और अग्निका परोक्षज्ञान हुआ अनुमान आदिकके ढंगसे तो वहाँ भी विषयमें अग्नि ही आयी। तो यों सर्व कुछ प्रतिभास बाह्य पदार्थोंसे प्रतिबद्ध है उसी प्रकार स्वप्न दर्शन भी बाह्य विषयाकारका ही निर्माण है याने ज्ञान स्वयं कुछ नहीं है, किन्तु बाह्य पदार्थोंका ही वह प्रकाश है इस तरह बहिरङ्ग अर्थ ही वास्तविक है ऐसा एकान्तः मानना ही चाहिए, *क्योंकि सर्वज्ञान बाह्य पदार्थोंके विषयपनेका ही अभिनिवेश है।* एक अभिप्राय हैं पदार्थ तो बाह्य ही सब कुछ है ऐसे बहिरङ्ग अर्थकी वास्तविकता मानने वालोंने अपना मंतव्य रखा।

बहिरङ्गार्थताके एकान्तमें परस्पर विरुद्ध शब्द ज्ञानोंका भी परमा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

र्थत: स्वार्थसम्बन्धकी प्रसक्ति अब बहिरङ्गार्थतैकान्तके समाधानमें कहते हैं कि देखिये मनुष्योंके जो संकेत हैं और उन संकेतोंसे प्रतिबद्ध जो पदार्थ हैं, शब्द हैं सो वहाँ परस्पर विरुद्ध शब्द और ज्ञानोंमें भी अपने अर्थका सम्बन्ध बन जायगा, ऐसा प्रसंग आ बैठेगा। यदि केवल बाह्य अर्थको ही माना जाता है और फिर उसका प्रतिभास मानकर बाह्य पदार्थोंकी मुख्यता दी जाती है। ज्ञान स्वयं अपने आपमें कोई सत्त्व नहीं रखता ऐसी बात कहनेपर जितने भी शब्द हैं, जितनी भी बुद्धियां हैं, चाहे वे परस्पर विरुद्ध हों लेकिन परमार्थसे उन सबका स्व अर्थसे सम्बन्ध मानना पड़ेगा। परन्तु है तो नहीं ऐसा। जैसे कोई बोले कि एक तृणके अग्र भागपर १०० हाथी बैठे हैं तो अब शब्द तो हो गए, कुछ प्रतिभास भी हुआ, मगर क्या वहां इस प्रकारका पदार्थ भी है? इस पद्धतिसे इन वचनोंका अपने विषयभूत अर्थमें सम्बन्ध नहीं है। या स्वप्नादिकमें जो कुछ भी ज्ञान चलते हैं उन ज्ञानोंका भी उनके विषयभूत पदार्थमें सम्बन्ध नहीं है। जैसे सो तो रहे हैं कमरेमें और स्वप्न आया कि बहुत बड़ा तालाब है, मगर है, मगरने मुझे पकड़ लिया, आदि जो नाना स्वप्नज्ञान होते हैं वहां ज्ञान तो हुआ पर न तालाब है, न मगर है, न कोई घटना ऐसी हुई है, लेकिन अब यहां बहिरङ्ग पदार्थोंका ही एकान्त किया जा रहा हो और प्रतिभास माना जाता हो औपचारिक चीज तो वहां ये सब चीजें आ जानी चाहिएं। पर न तो तृणके अग्रभागपर १०० हाथी हैं और न स्वप्नमें समझा गया कोई पदार्थ है. क्योंकि इस प्रकारका वहाँ सम्वाद ही नहीं है. इस कारण बहिरङ्ग पदार्थका एकान्त मानना, अन्तरङ्ग ज्ञान कुछ भी नहीं है, ऐसा आग्रह संगत नहीं है।

शंकाकार द्वारा लौकिक व अलौकिक दो अर्थ करके दोषोपलम्भके निराकरणका प्रयास– अब शंकाकार कहता है कि देखिये पदार्थ दो प्रकारके होते हैं, लौकिक और अलौकिक। लौकिकका अर्थ है जिसके विषयसे लोकको, साधारण जनोंको संतोष हो जाय वह तो लौकिक है सो वह उन लौकिक जनोंके लिये सत्यपनेसे माना गया, ज्ञानका विषयभूत है जिस विषयमें साधारण लौकिक जनोंको संतोष न हो, किन्तु शास्त्रके जानने वाले महान आत्माओंको संतोष हो वह अलोक अर्थ कहलाता है। सो कलोक अर्थमें स्वर्ग नरक आदिक आते हैं और स्वप्नमें होने वाले ज्ञानके विषयमें आते हैं और स्वप्नमें होने वाले ज्ञानके विषयमें आते हैं तो ये पदार्थ सब हैं। स्वप्नमें भी जो माने गए वे भी हैं। क्योंकि जो सर्वथा अविद्यमान हो ऐसे अविद्यमान पदार्थोंके प्रतिभास और वचन हो ही नहीं सकते। जो बात कभी भी न हो, कैसा ही सत्त्व न हो उसका नाम संज्ञा वचन भी नहीं हुआ करता। अब रही खरविषाण जैसी बात तो भावान्तर स्वभाव रूपसे खरविषाण आदिकका प्रतिभास तो होता है। जैसे खरका भी प्रतिभास है, विषाणका भी प्रतिभास है। अन्य जगह सींग दिखती है यहां नहीं। तो भावान्तर स्वभावरूपसे खर विषाण आदिकका प्रति-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भास होता है तब उसका सम्भव होना बन जायगा और खरविषाण शब्दका वचन भी बन बैठेगा, क्योंकि वह अलौकिक पदार्थ है साधारण लोग के ज्ञानके बहिर्भूत है ।

अन्तरङ्ग अर्थ (विज्ञान) न मानकर मात्र बहिरङ्गार्थ माननेपर इष्ट सिद्धिकी अशक्यता—अब उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि यह सब बात कहना भी एक अलौकिक विचित्र सी है। जागते समयमें जो ज्ञान होता है वह निरालम्बन ही है, क्योंकि ज्ञान होनेसे स्वप्न प्रत्ययकी तरह। इस प्रकार परार्थानुमानके ज्ञान का जो बोध है सो परार्थानुमान ज्ञान अपने अर्थसे प्रतिबद्ध है या अपना नहीं, ऐसे अर्थसे प्रतिबद्ध है ? यदि कहो कि वह परार्थानुमानका ज्ञान अपने अर्थसे नहीं किन्तु अन्य अर्थसे प्रतिबद्ध है तब फिर उस हीके द्वारा विचारका और विषयाकार प्रतिभास का हेतुसे व्यभिचार आता है। परार्थानुमान ज्ञान अगर विचार रूप है तो भी अपने अर्थसे प्रतिबद्ध नहीं है। लो किया गया ना व्यभिचार ! अभी तो यह कहा जा रहा था कि जो कुछ भी ज्ञान होता है वह अपने विषयभूत अर्थसे प्रतिबद्ध होता है लेकिन यहाँ परार्थानुमान वाले ज्ञानको अपने अर्थसे प्रतिबद्ध नहीं माना जा रहा। यदि कहो कि परार्थानुमानका ज्ञान अपने विषयभूत अर्थसे प्रतिबद्ध है तो जितने भी सम्वेदन हैं ज्ञान हैं उन सबका सविषय रूपसे विरोध हो जायगा, उनका आलम्बन सहितपना सिद्ध नहीं होता। परार्थानुमान ज्ञान अलौकिक अर्थका आलम्बन करनेसे लौकिक अर्थके आलम्बन करने रूप साध्यमें हेतुका व्यभिचार व विरोध न होगा। इस शङ्कापर कहते हैं कि लौकिक अर्थ और अलौकिक अर्थ इनके आलम्बन से रहित अनुमानके द्वारा हेतुका व्यभिचार और विरोध ज्योंके त्यों अवस्थित हैं। लोक और अलोक अर्थका जो कि परस्पर विरुद्ध हैं एक ही बार एक ही अनुमानमें उनका सम्भव नहीं हो सकता। इस तरह बहिरङ्ग अर्थका एकान्तपना भी समीचीन नहीं है जिस अन्तरङ्ग अर्थका एकान्तपना सही नहीं है। इस परिच्छेदमें दो विचारोंकी मीमांसा चल रही है। कोई लोग मानते हैं कि सिर्फ ज्ञान ही सत्य है, बाह्य पदार्थ मिथ्या हैं, तो कोई कहते हैं कि बाह्य पदार्थ ही सत्य हैं, ज्ञान तो उनका एक प्रतिभासमात्र है। सो यहाँ तक उन दोनों एकान्तोंकी मीमांसा करके यह सिद्ध किया कि केवल अन्तरंग अर्थका एकान्त करना भी समीचीन नहीं है और बाह्य पदार्थोंका एकान्त करना भी समीचीन नहीं है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥८२॥

अन्तरङ्गार्थ व बहिरङ्गार्थ मानने विषयमें उभयैकान्त व अवाच्यतैकांत का निराकरण अन्तर्ज्ञानका एकान्त और बहिर्ज्ञानका एकान्त युक्तिसिद्ध न रहा। अर्थात् जो दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि एक विज्ञान ही तत्त्व है, बाह्य पदार्थ कुछ भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तत्त्व नहीं हैं और कोई दार्शनिक ऐसा मानते कि ज्ञान क्या है ? वह तो पदार्थोंका एक प्रकाश है। तत्त्व तो बाह्य पदार्थ ही है। यों दोनों दार्शनिकोंके एकान्त जब निराकृत हो गए तब तृतीय दार्शनिक कहता है कि अन्तर्ज्ञेय एकान्त बहिर्ज्ञेय एकान्त का एक साथ मानना स्वीकार कर लीजिए ! जब दोनों एकान्तोंमें विरोध है और एकान्त सही नहीं बनता तब दोनों ही मान लीजिए ! इसके उत्तरमें कहते हैं कि जो लोग स्याद्वाद नीतिसे विद्वेष रखते हैं अर्थात् अपेक्षा और दृष्टि बनाकर धर्मका निर्णय नहीं करते हैं उनके यहाँ इन दोनों एकान्तोंका एक साथ मानना विरोध है। अतः उभय एकान्त भी सही तत्त्व नहीं है। तब चतुर्थ दार्शनिक कहता है कि तब तो अंतरंग एकान्त और बहिरंग एकान्त दोनोंकी अवाच्यता स्वीकार कर लीजिए अर्थात् यह तत्त्व अवक्तव्य ही है। इसके समाधानमें कहते हैं कि यह बात तो स्ववचनबाधित है और इस स्ववचनबाधितताका वर्णन पहिले अनेक बार किया जा चुका है। तत्त्व अवक्तव्य है तो गुण भी कैसे अवक्तव्य बन गया ? अतः स्याद्वादका आश्रय करनेपर कहा जाय तो कोई दोष नहीं है और स्याद्वादके आश्रयमें यह बात सिद्ध होती है कि कथञ्चित् अन्तरङ्ग तत्त्व है परमार्थ, कथञ्चित् बहिरङ्ग तत्त्व है परमार्थ। और क्रम विवक्षामें दोनों ही बातें हैं और एक साथ कहा नहीं जा सकता इस कारण अवक्तव्य है। अब इस ही बातको विवरण सहित बताते हैं कि किस दृष्टिमें किस प्रकारसे यह तत्त्व सिद्ध होता है ?

भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः ।
बहिः प्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते ॥ ८३ ॥

स्याद्वादका आश्रय करनेपर अन्तर्बाह्य अर्थका यथार्थ निर्णय—भावप्रमेयकी अपेक्षामें तो प्रमाणाभासका अपलाप निराकरण होता है। तो जब भाव प्रमेयकी दृष्टि रखते हैं, भावप्रमेय है ज्ञानतत्त्व, जो जान रहा है जो दिखता है उसकी मुख्यतासे देखते हैं तब प्रमाणाभास कुछ नहीं रहता और जब बाह्यप्रमेयकी अपेक्षासे देखते हैं तो प्रमाण भी है कोई और कोई प्रमाणाभास भी है ऐसा हे प्रभो ! आपके सिद्धान्तमें सही बताया गया है। जितने भी सम्वेदन हैं सभी सम्वेदन स्वसम्विदित होते हैं। जो भी ज्ञान होता है चाहे बाह्यपदार्थ विषयक भी ज्ञान हो तो चाहे बाह्य पदार्थके निर्णयमें थोड़ा समझना भी पड़ेगा, युक्तिका सहारा भी लेना पड़ेगा, किंतु जो ज्ञान जान रहा है वह ज्ञान चेतन है। 'है' और कोई कार्य कर रहा है ये बातें तो जानने वालेके ज्ञानमें स्पष्ट रहा करती हैं। तो स्वसम्वेदन कथञ्चित् प्रमाण है। उसकी अपेक्षासे सर्व प्रत्यक्ष है, सम्वेदनकी स्थितिमें इस सम्वेदन करने वालेके दो प्रकारके अनुभव चलते हैं, चाहे उसपर कोई उपयोग दे अथवा न दे। एक तो यह है — मैं हूँ, इस तरहका प्रत्यक्ष रहता है ! दूसरे समझदार हूं, चेतन हूं तो सत्त्व और चेतनत्वकी दृष्टिसे सभी ज्ञानोंमें स्वसम्वेदनकी प्रमाणता है, उसकी अपेक्षासे देखा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाय तो सभी सम्वेदन प्रत्यक्ष हैं। उस दृष्टिमें कुछ भी प्रमाणाभास नहीं है। यहाँ यह बात समझनी चाहिए कि जैसे किसी पुरुषने सीपको चाँदी समझा याने वहाँ सीप है, चाँदी नहीं हैं और उस सीपको चाँदी समझा तो बाह्य पदार्थोंके निर्णयमें तो युक्ति और श्रम होगा मगर उस समझमें भी चाहे चाँदी ही समझा पर जो ज्ञान बन रहा है जो प्रतिभास हो रहा है वह उसको स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है, उसकी दृष्टिसे प्रमाणाभास कुछ नहीं है। यहाँ तो ज्ञान है और उसका परिणमन चला करता है, वहाँ प्रमाणाभास कुछ नहीं है। स्वसम्वेदनकी अपेक्षासे सभी सम्वेदन प्रत्यक्ष हैं। इस बातमें क्षणिकवादी भी विवाद नहीं करते। उनके यहाँ भी ऐसा सिद्धान्त माना है कि समस्त चित्तोंके चेत्ता अर्थात् ज्ञानक्षण आत्मसम्वेदन रूप होते हैं और प्रत्यक्ष होते हैं याने प्रत्येक ज्ञानक्षण अपने स्वरूपका सम्वेदन करता है अतएव प्रत्यक्ष है। हाँ, यह बात अवश्य है कि उनका वह स्वसम्वेदन प्रत्यक्ष निर्विकल्प है। ऐसा जो क्षणिकवादी कहते हैं वह अयुक्त है, क्योंकि स्वका और पदार्थका निश्चय किए बिना प्रत्यक्षपनेकी उपपत्ति नहीं होती है। जिस किसी भी वस्तुको प्रत्यक्षसे जाना तो उस जाननेके सम्बन्धमें दो बातोंका निश्चय है। एक तो जो पदार्थ जाना जा रहा है उस पदार्थका जानन हो रहा है, दूसरे जो स्वय जानन बन रहा है वह सम्वेदन अपने आपमें प्रत्यक्ष हो रहा है। तो जैसे किसी भी पदार्थको हम समझते हैं वहाँ दो निर्णय पड़े हुए हैं—एक निर्णय तो यह है कि यह पदार्थ ऐसा ही है, अमुक यह ही है। दूसरा निर्णय यह कि यह मैं जो जान रहा हूं यह ज्ञान मेरा सही है। तो प्रत्येक ज्ञानोंमें अपने आपका और बाह्य पदार्थका निर्णय बसा हुआ ही रहता है, इस कारण किसी भी सम्वेदनको निर्विकल्प नहीं कह सकते। प्रत्येक ज्ञानमें विकल्प है, आकार है, प्रतिभास है, वस्तु-विषयक परिच्छेदन है। हाँ, रागद्वेष विकल्प न रहें ऐसा भी ज्ञान होता है, यह कहा जाय तो यह युक्तिसङ्गत बात है।

सम्वेदनपद्धतिसे संवेदनोंको प्रत्यक्ष न माननेसे दोषापत्तिका दिग्दर्शन

सर्व सम्वेदनके प्रकारसे प्रत्यक्ष है, ऐसा न माननेपर अर्थ यह होगा कि उस ज्ञानका किसी अन्य हेतु आदिकसे अनुमान किया जायगा। जिस सम्वेदनने किसी पदार्थको जाना, पदार्थको तो जान लिया। अब उस ही सम्वेदनको यदि प्रत्यक्ष स्वयं न माना जाय, अन्यसे उसको प्रमाण माना जाय तो इसका अर्थ है कि जितनी भी बुद्धियाँ होती हैं उन सबका अन्य चिन्हसे प्रमाण बनेगा। और कोई यह कहे कि अन्य चिन्हसे प्रमाण बनना आदिक हमें इष्ट है तो ऐसा इष्ट हो सकना युक्त नहीं हो सकता। क्योंकि उस परोक्ष ज्ञानका ग्रहण करने वाला कोई साधन नहीं है। मीमांसकका सिद्धान्त है ऐसा कि जितने भी ज्ञान होते हैं वे सब बाह्य पदार्थोंको जाना करते हैं। पर ज्ञान खुदका ज्ञान नहीं कर पाता। तो इसके मायने यह हुआ कि ज्ञान परोक्ष रह गया तो ऐसे परोक्ष ज्ञानको जता देवे ऐसा कोई साधन नहीं है। उस बुद्धिके प्रकट

http://sahjanandvarnishastra.org/

करनेके लिए कोई कहे कि पदार्थका ज्ञान हुआ यही लिङ्ग बन जायगा। ज्ञान किसी पदार्थका ज्ञान तो करता ही है। तो वही ज्ञान चिन्ह बन जायगा। जिससे कि इस सम्वेदनका पता हो जाय तो यह बात भी युक्त नहीं है। क्योंकि वह साधनके विशेषण रूप सिद्ध नहीं हो सकता। वे तो सब समान हैं। किसी चिन्हसे जाना तो चिन्हका ही ज्ञान हुआ, सम्वेदनको कैसे जाने? वहां भी अन्य अनुमान बनाना पड़ेगा और फिर समझिये—जो ज्ञान स्वयं अप्रत्यक्ष हुआ वह पदार्थके ज्ञानसे अनुमानमें लगाया जाय, इस प्रकारका जो अर्थ ज्ञान है सो क्या वह कर्मरूप होकर अर्थको प्रकट करे ऐसा क्या उस परोक्ष ज्ञानका साधन माना जायगा? पदार्थ तो असिद्ध है तो प्रकट-पना भी असिद्ध हो जायगा। सो ऐसी बात नहीं कह सकते, वह बाह्य देशसे सम्बन्ध रखता हुआ प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है। कोई ऐसी मनमें शंका न रखे कि पदार्थ तो दूर है ज्ञान दूर है। तो पदार्थकी असिद्धता होनेसे पदार्थकी प्रकटता भी असिद्ध हो जायगी. सो बात नहीं।

ज्ञानके अस्वसंवेदित्वकी विकल्पासहता—अच्छा बताओ! वह अर्थको प्रकट करने वाला जो भाव है उसे पदार्थका धर्म मानते हो कि ज्ञानका धर्म मानते हो? यदि कहो कि पदार्थका जो प्रकाश होता है, पदार्थकी जो समझ बनती है वह पदार्थका धर्म है। तो पदार्थका परिज्ञान करने वाले ज्ञानसे फिर इसकी कोई विशेषता न रही, क्योंकि ज्ञान भी पदार्थका परिच्छेद करने वाला है और परिच्छेदन धर्म अर्थ में भी आ गया तब पदार्थको जानने वाले ज्ञानसे कोई विशेषता न रही। अर्थ प्राकट्य में तो उसकी असिद्धि है। वह साधन बन ही नहीं सकता है। अर्थ परिच्छेदक ज्ञानसे जो समानता है तो इसके मायने यह है कि जैसे अर्थ परीक्षक है अनुमानकी अपेक्षा रखता है इसी प्रकार अर्थ प्राकट्य सम्वेदन सभी अनुमानकी अपेक्षा रखने लगेंगे या जिस ज्ञानको स्वसम्वेदी नहीं माना है तो वह अन्य अनुमान आदिककी अपेक्षा करता है इसी प्रकार अर्थ प्राकट्य नामका अर्थ धर्म भी अन्य अनुमानकी अपेक्षा करने लगेगा। ज्ञान जो कि परिच्छेदक किया गया वह बन जाय प्रत्यक्ष यह बात ठीक नहीं कही जा सकती। जैसे कि अन्य संतानके द्वारा जो अर्थका परिच्छेद किया गया याने अन्य पुरुषमें उत्पन्न होने वाले ज्ञान क्षणोंसे जो पदार्थ परिज्ञान होता है उससे दूसरे अर्थका परिचय तो न हो जायगा। इस कारणसे मानना होगा कि सम्वेदन प्रत्येक अपनी दृष्टिमें प्रत्यक्षरूपसे ही है तभी बाह्य पदार्थका वह प्रत्यक्ष कर सकता है, ऐसा नहीं हो सकता कि ज्ञान तो स्वयं प्रत्यक्ष न रहा करे और बाह्य पदार्थ प्रत्यक्ष बन जाया करें। शङ्काकार कहता है कि बाह्य पदार्थ तो प्रत्यक्षरूप हैं इस कारणसे उन बाह्य पदार्थोंका धर्म जो अर्थ प्राकट्य है वह भी प्रत्यक्ष सिद्ध हो जायगा। सो यह शङ्का बिल्कुल असंगत है यदि अर्थ धर्म प्रत्यक्षभूत हो जाता तो इसके माने यह है कि पदार्थ स्वतः प्रत्यक्ष बन गया पर ऐसा है कहां? पदार्थ स्वतः प्रत्यक्ष बनता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहाँ है ? जो ज्ञान जान रहा है वह ज्ञान प्रत्यक्ष है और पदार्थ यदि स्पष्टरूपसे जाना जा रहा तो प्रत्यक्ष है, अस्पष्टरूपसे जाना जा रहा है तो परोक्ष है। कोई यदि ऐसी आशङ्का रखे कि पदार्थका स्वतः प्रत्यक्षपना मत हो, अपने ज्ञानमें प्रतिभासमान जो पदार्थ है वह पदार्थ तो प्रत्यक्ष हो जायगा। ऐसी आशङ्का भी सही नहीं है क्योंकि ज्ञानमें प्रतिभासमान हुए पदार्थको यदि प्रत्यक्षरूप मान लोगे तो अन्य संतान अर्थात् अन्य पुरुषमें उत्पन्न होने वाले ज्ञानोंमें भी जो कि साक्षात् प्रतिभासमान हो रहे हैं वहां भी उस पदार्थका प्रत्यक्षपना हो जायगा अर्थात् जाने तो और कोई और प्रत्यक्ष हो जाय किसी अटपट दूसरेको, कि क्योंकि अब तो अन्य संतानमें होने वाले ज्ञानको भी अनुमेय मानना होगा।

अर्थपरिचयको अस्वसंवेदी माननेपर विडम्बना यहाँ शङ्काकार कहता है कि जो प्राकट्य है वह तो प्रमाता पुरुषके स्वसम्विदित हो रहा है, उब उसी प्राकट्यके इन्द्रियज्ञानसे उस प्राकट्यमें विशेषता हो जायगी सो भी नहीं कह सकते क्यों कि बाहरमें जो अर्थका प्रकाश हुआ है वह ज्ञाता पुरुषके स्वसम्विदित है और उस कारणसे उसका चिन्ह ही ज्ञानमें प्रसिद्ध है, ऐसा माननेपर यह बतलावें कि पदार्थका धर्म स्वसम्विदित हो कैसे जायगा ? ये घट पट आदिक पदार्थ ये क्या स्वयं स्वसम्विदित हैं ? ये अपने आपको खुद जान लेते हैं क्या ? जब ये अचेतन घटादिक पदार्थ अपने आपको कुछ जान नहीं सकते हैं तो फिर ये पदार्थके धर्म स्वसम्विदित कैसे बन जायेंगे ? सो ये शङ्काकार मीमांसक ज्ञानको तो अस्वसम्विदित मान रहे और अर्थ स्वरूपको, अर्थ प्रकाशको स्वसम्विदित मान रहे तो भला अब सोचो कि कैसे ये विपरीत बुद्धि वाले न कहे जायें ? सभी लोग जानते हैं कि पट आदिक पदार्थ स्वयं अपने आपको नहीं जानते और जानने वाला यह खुदका ज्ञान प्रकाश, यह खुदको जान सकता है। लेकिन यह तो विपरीत बात ही कही जा रही है कि ज्ञान तो होता है अस्वसम्विदित और अर्थ स्वरूप होता है स्वसम्विदित, इस कारणसे जो परिच्छिद्यमान भाव है, मायने अर्थका प्रकाश है वह ज्ञानसे उत्पन्न हुआ पदार्थका धर्म है तो ऐसे अर्थ ज्ञानका उस परोक्षज्ञानसे भेद कैसे रहेगा जिससे कि अर्थप्रकाशका वह ज्ञान साधन बन सके। अन्ततोगत्वा अर्थात् सब कुछ हैरान होनेके बाद यह ही मानना पडेगा कि प्रत्येक सम्वेदन सम्वेदनकी अपेक्षासे प्रत्यक्ष है, वहाँ प्रमाणाभासकी गुन्जाइस नहीं होती।

अर्थप्राकट्यको स्वसंविदित माननेपर परोक्षज्ञान माननेकी निष्प्रयोजनताका प्रसङ्ग– इस प्रसंगमें वह बड़े आश्चर्यकी बात चल रही है कि यह शङ्काकार ज्ञानको तो अस्वसंविदित मान रहा है याने ज्ञान अपने आपको खुद जानता नहीं है, और जो पदार्थका प्रकाश है उसे स्वसम्विदित मान रहा है कि पदार्थका यह प्राक-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

टय अपने आप ही समझा जा रहा है, तो कैसे कहा जा सकता है कि ऐसा कहने वाले की बुद्धि विपरीत नहीं है। और इस ही कारण जो अर्थ प्रकाश है, जिसे अर्थ धर्म कहो, पदार्थका ज्ञान कहो, हुआ तो ज्ञानसे ही उत्पन्न मगर माना जा रहा है पदार्थका धर्म, तब उसमें परोक्षज्ञानसे विशेषता क्या आयी ? जिस कारणसे वह अर्थ प्रकाश उस ज्ञानके परिचयका साधन बन सके। अब जैसा पुरुष आत्मा और यह अर्थ प्राकट्य इनमें यदि यह कहेंगे कि आत्मा तो स्वसम्विदित है इस कारणसे अर्थ प्राकट्यसे अन्तर आ जायगा। तब देखिये ! कि परोक्ष ज्ञान और स्वसम्विदित पुरुष इन दोनोंमें से और परोक्षज्ञान और स्वसम्विदित अर्थ प्रकाशसे किसी भी एक से पदार्थकी परि-समाप्ति हो जायगी। अर्थात् परिचय बन जायगा तब परोक्षज्ञान माननेसे फायदा क्या रहा ? स्वसम्विदित अर्थ परिच्छेदसे ही अर्थात् उस अर्थज्ञानसे ही अपने अर्थका ज्ञान सिद्ध हो जाता है। तब परोक्षज्ञान अकिञ्चित्कर हो जाता है। ये शङ्काकार मीमांसक ज्ञानको परोक्ष मानते हैं याने ज्ञान पदार्थको तो जानता है, पदार्थका जो ज्ञान हुआ वह तो स्पष्ट है स्वसम्विदित है। समझमें आ गया कि यह अमुक पदार्थ है, अब उस पदार्थको जाननेवाले ज्ञानको समझनेके लिए अन्य उपायकी जरूरत पड़ती है। तो यहाँ ज्ञानको स्वसम्विदित नहीं माना, परोक्ष माना है, और जो अर्थ प्रकाश है वह स्व-सम्विदित माना गया है। तो ऐसी स्थितिमें जब अर्थज्ञानसे ही अर्थका बोध हो गया तो परोक्षज्ञान माननेकी आवश्यकता क्या रही ? अथवा पुरुष स्वसम्विदित पदार्थ है उससे ही पदार्थक ज्ञान बन गया तो परोक्षज्ञान माननेका क्या प्रयोजन रहा? क्योंकि अब तो वही पुरुष अथवा पदार्थ करण बन गया। और आत्मा कर्ता है, पदार्थ कर्म है, इस कारण अब परोक्षज्ञानकी आवश्यकता क्या है ?

प्रमितिक्रियाके कर्ता कर्म करणकी कल्पनामें भी अनन्यता व स्व संविदितताकी सिद्धि— यदि शङ्काकार कहे कि करणके बिना क्रिया सम्भव नहीं होती याने आत्माके स्वरूपकी क्रिया है पदार्थका जानना और वह क्रिया करणके बिना सम्भव नहीं है। और करणकेरूपमें ही हम परोक्षज्ञानको स्वीकार कर लेते हैं तो सुनो ! जब पुरुष अपने आपका सम्वेदन करता है तो आत्माकी उस सम्वेदन क्रियामें क्या करण होता है ? याने वहाँपर किसके द्वारा यह आत्मा अपने आपको जान लेता है ? यदि कहो कि स्वयं आत्मा ही करण है। अर्थात् आत्मा अपने आपके द्वारा अपने आपका सम्वेदन कर लेता है तब ठीक ही है। वह ही आत्मा पदार्थके परिचय में करण बन जाय। जो कर्ता है उससे ही अभिन्न वही करण बन जाय, इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। जो कर्तृक है याने जिसके कर्ताका विभाग नहीं किया जा सकता है वह भी करण बन जाता है। जैसे भिन्न-भिन्न चीजोंमें भिन्न-भिन्न कर्ता कर्म करण देखे जाते हैं ऐसे ही खुदकी खुदमें जो क्रिया हो रही है उसमें अभिन्न कर्तृपना भी देखा जाता है। तो कर्तासे अभिन्न भी करण होता है इस कारण अब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थ परिज्ञान यदि पदार्थका ही धर्म है और उसके स्वसम्वेदनमें स्वयं वही करण बन जाता है तो लो। पुरुषकी भी क्या जरूरत रही ? परोक्षज्ञानकी भी क्या जरूरत रही ? वही पदार्थ अपने ही द्वारा अपना परिज्ञान कर लेगा तब पुरुष और पदार्थका परिज्ञान इनमें जब एक ही स्वात्माके द्वारा अर्थका परिचय बन गया तब द्वितीय परोक्ष-ज्ञान करण माननेसे क्या फायदा है ? और, भी सुनो ! यदि अर्थज्ञानमें दिया गया हेतु व्यभिचारी है इसलिए हेतु नहीं रह सकता। क्योंकि अब तो ज्ञानके अभावमें भी दूर और व्यवहित पदार्थोंका सद्भाव सिद्ध हो गया याने पदार्थका लक्षण माना है पदार्थका परिज्ञान याने पदार्थका प्रकाश हो तब समझा जायगा कि पदार्थ है लेकिन दुनियामें अनेक पदार्थ ऐसे हैं कि ज्ञान नहीं होता और पदार्थ मौजूद है। और, जहाँ परोक्षज्ञान साध्य बनाया है वहाँ उस परोक्षज्ञानके अभावमें भी अर्थ स्वरूपका सद्भाव पाया जाता है। यदि परोक्षज्ञानके अभावमें भी अर्थका प्रकाशका भी अभाव बन जाय तब तो पदार्थका अभाव ही बन बैठेगा, परन्तु ज्ञानके अभावमें अर्थका अभाव तो नहीं होता, इस कारणसे अब यह सिद्ध न हो सकेगा कि अर्थका प्रकाश अर्थका धर्म है और अर्थका स्वरूप है।

ज्ञानको स्वरूपत: परोक्ष माननेका एकान्त करनेपर परिच्छिद्यमानत्व धर्मसे विशिष्ट या अविशिष्ट विशेषणकी अप्रतिपत्तिका प्रसंग– शंकाकार कहता है कि जाना जा रहा है इस रूपसे विशिष्ट अर्थका अभाव हो जायगा, तो होने दो याने जिस पदार्थका ज्ञान नहीं है उस पदार्थका ज्ञान नहीं है उस पदार्थका अभाव है यह सिद्ध करना है। तो सिद्ध है याने वह पदार्थ ज्ञेयपनेसे विशिष्ट नहीं है तो जाननपनेसे युक्त पदार्थका अभाव है सो सही भी बात है कि जिस पदार्थका ज्ञान नहीं हो रहा वह पदार्थ जाननपनेसे विशिष्ट नहीं है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि जब परोक्षज्ञानकी ही सिद्धि नही है अथवा ज्ञानकी ही सिद्धि नहीं है, क्योंकि वह परोक्ष है। तब पदार्थकी या किसी भी तत्त्वकी प्रतिपत्ति हो ही नहीं सकती। विशेषणकी अप्रतीति होनेपर उस विशेषणसे विशिष्टपना कहीं सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे कि अभी बताया गया कि जाननपनेके धर्मसे विशिष्ट पदार्थका अभाव है तो जाननपने धर्मसे विशिष्ट इतना भी कह सकते ? क्योंकि जब ज्ञानकी सिद्धि ही नहीं है। ज्ञानके अभावमें जाननपनेसे विशिष्ट पदार्थका अभाव है, यह बात बनेगी कैसे ! जब ज्ञान नहीं है और पदार्थ जाना जा रहा नहीं तो जाननपनेसे विशिष्ट विशेषण लग ही नहीं सकते तो पदार्थका स्वलक्षण अर्थज्ञानको माननेमें जो व्यभिचारपना दिखाया था वह सही रहता है, उसमें हेतुपना नहीं रह सकता।

ज्ञानको स्वरूपत: परोक्ष ही माननेपर उक्त विडम्बनाओंका फलित स्पष्टीकरण—प्रकरण यह चल रहा है कि यदि ज्ञान परोक्ष है, तो ऐसे उस परोक्ष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानके समझनेमें चिन्ह क्या है ? याने किस उपायसे हम उस परोक्ष ज्ञानको समझ सकते हैं ? शंकाकारका सिद्धान्त यह है कि ज्ञानने पदार्थका परिज्ञान कर लिया। लेकिन ज्ञान खुदको नहीं जानता। जैसा कि जैन आदिक मानते हैं कि ज्ञान स्वयंको भी समझता है और ज्ञानमें जो विषय आया उस पदार्थका भी परिचय रखता है। किन्तु यह शंकाकार ज्ञानको स्वसम्वेदी नहीं मानता, परोक्ष मानता है। तो यह प्रश्न होना प्राकृतिक है कि ज्ञानने तो पदार्थको जान लिया, अब ज्ञानको जाननेका क्या उपाय है कि इस ज्ञानने पदार्थको जाना और यह ज्ञान समीचीन है। इसके उत्तरमें शंकाकारने यह कहा कि पदार्थका जो परिचय होता है वही साधन है कि वह इस परोक्षज्ञानका अनुमान करा दे। तो इस सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर होते-होते यह सिद्ध हुआ कि पदार्थका जो ज्ञान है वह यदि पदार्थका धर्म है तो इस परोक्षज्ञानके परिचयका साधन नहीं बन सकता। तो इस ही समर्थनसे यह भी खण्डित हो जाता है कि कोई यह सोचे कि अर्थका धर्म बनकर अर्थज्ञान यदि परोक्षज्ञानके परिचयका साधन न बना तो ज्ञानका धर्म बनकर यह पदार्थ ज्ञान उस परोक्षज्ञानकी सिद्धिका साधक बन जायगा। सो यह भी खण्डित हो जाता है। मैं पदार्थको जानता हूं ऐसी प्रतीति होने से आत्माके जो अर्थज्ञान जगा, जो अर्थ प्रकाश बना वह ज्ञानका धर्म है। और, वह परोक्षज्ञानके परिचयका साधन है। ऐसा माननेमें सीधा विरोध तो यों है कि आत्मा की जो वह बुद्धि है, जिसे कारण ज्ञान कहते हैं वह ज्ञान जब परोक्ष है तो वहाँ इस प्रकारकी प्रतीति ही नहीं जग सकती है कि मैं पदार्थको जानता हूं। इसी बलपर ही तो शंकाकार ज्ञानका धर्म कह रहा है कि मैं पदार्थको जानता हूं। ऐसी प्रतीति बन रही है किन्तु जिनके सिद्धान्तमें ज्ञान सर्वथा परोक्ष है उनके यहाँ यह प्रतीति बनना भी असम्भव है कि मैं पदार्थको जानता हूं। तब जाननपनेके धर्म विशेषणसे रहित ही अर्थ बना और जो ज्ञानकी अपेक्षा रखनेका स्वभाव वाला बना उसे मान रहे हो परोक्षज्ञानका हेतु तो यह हेतु व्यभिचारी ही सिद्ध होता है। जहाँ जहाँ परोक्षज्ञान है वहाँ वहाँ अर्थका परिज्ञान है ऐसी व्याप्ति न बन सकनेसे और परोक्षज्ञानके अभावमें भी अर्थ स्वरूपके देखे जानेसे यह हेतु व्यभिचारित हो जाता है और पदार्थका निज-स्वरूप पदार्थका ज्ञान मानना खण्डित हो जाता है। तो यहाँ तो यह बात सिद्ध की गई कि परोक्षज्ञानके परिचयका साधन पदार्थ परिज्ञान नहीं है। शंकाकार जो यह समझाना चाहता था कि पदार्थका जो ज्ञान बना है यही सिद्ध कर देगा कि किसी ज्ञानके द्वारा यह ज्ञान बना है यों वह अर्थपरिज्ञान ज्ञायक उस ज्ञानका अनुमान करा देगा सो यह अर्थ प्रकाश परोक्षज्ञानका साधन नहीं बन सकता है।

अस्वसंविदितताके सिद्धान्तमें इन्द्रिय प्रत्यक्षत्वकी अनुपपत्तिका प्रसंग—अर्थप्रकाशकी परोक्षज्ञान साधकताके निराकरणसे इन्द्रिय मन आदिकका प्रत्यक्ष भी खण्डित हो जाता है। मुझमें चक्षु आदिक इन्द्रिय हैं, रूपादिकका ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्यथा न बन सकता था। इस अनुमानसे जो इन्द्रिय आदिकको प्रत्यक्ष माना जाता था वह भी निराकृत हो जाता है। शंकाकारसे किसी प्रसंगमें यह पूछा गया कभी कि यह बताओ कि चक्षु खुदको तो नहीं देखते। आँखें खुदकी आँखोंको जानती नहीं हैं तो इन आँखोंका भी स्पष्ट परिचय होगा कैसे कि मेरेमें आँख हैं। उसका उत्तर यों देता है शंकाकार कि इस अनुमानसे अपनी आँखोंका अस्तित्व सिद्ध होता है कि मुझ में चक्षु आदिक इन्द्रियाँ हैं, रूपादिकका ज्ञान होनेसे। यदि चक्षु आदिक इन्द्रियाँ न होतीं तो रूपादिकका ज्ञान नहीं बन सकता था। यह कहना भी इस निराकरणके प्रकरणसे खण्डित हो जाता है, क्योंकि यह ज्ञान वे इन्द्रियाँ ये सभी अतीन्द्रिय होने के कारण परोक्ष ज्ञानसे कोई विशेषता नहीं रखती अर्थात् जैसे परोक्षज्ञानसे आसक्ति है इसी प्रकार इन सब ज्ञानोंमें भी आसक्ति है। यदि कुछ विशेषता मानी जा रही हो इन्द्रिय और परोक्ष ज्ञान इनसे किसी भी एक भावेन्द्रिय आदिकके द्वारा जो कि सुसम्विदित है, पदार्थका परिचय हो गया। फिर दूसरा परोक्षज्ञान माननेसे फायदा क्या ? अरे वे भावेन्द्रिय ही तो ज्ञानस्वरूप हैं। और, भी देखिये ! कि द्रव्येन्द्रिय आदिक जो हेतु बताये गए हैं वे व्यभिचारी भी हैं। क्योंकि ज्ञान नहीं भी हो रहा तो भी इन्द्रिय आदिक मौजूद ही हैं। जो ज्ञान उत्पत्तिके प्रति कारण है ऐसे इन्द्रिय अथवा मन इनमें अवश्य ही निरन्तर कार्यवत्ता रहे याने पदार्थका यह परिच्छेदन करता रहे ऐसा तो है नहीं। तो जिस समय इन्द्रिय और मन अपना कार्य नहीं कर रहे हैं अर्थात् पदार्थका परिज्ञान नहीं कर रहे हैं उस समय क्या इन्द्रिय और मन है नहीं ? हैं। तब ज्ञानके अभावमें भी जब इन्द्रिय और मन बन गए तो हेतु व्यभिचारी हो गया। तब सर्वथा परोक्षज्ञानवादी अपनी इन्द्रियको भी प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं कर सकता है। इन्द्रिय आदिकका भी जो ज्ञान है वह भी परोक्ष ही रहता है। तो जब इन्द्रिय ज्ञान भी परोक्ष सिद्ध हो गया तो प्रत्यक्षसे भिन्नका जो अवभास है उसका स्वसम्वेदन होनेसे वह कथन प्रत्यक्ष विरुद्ध होता है, याने जाना तो जा रहा, सबकी समझमें आ रहा कि ज्ञान खुदका भी ज्ञान करता है। ज्ञानका स्वरूप समझनेके लिए किसी अन्य ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन ये परोक्षज्ञानका ही आग्रह करने वाले शंकाकार ज्ञानकी परोक्षता मानते हैं सो वह अप्रत्यक्ष है और अनुमान विरुद्ध है। यदि सुखका ज्ञान, दुःखका ज्ञान परोक्ष हो जाय तो किसी भी जीवको हर्ष और विषाद उत्पन्न हो ही नहीं सकता। जैसे दूसरे आत्माका सुख दुःख दूसरेको प्रत्यक्ष नहीं है तो दूसरा अन्य हर्ष विवाद तो नहीं कर लेता। इससे मानना होगा कि ज्ञान स्वसम्वेदी ही होता।

प्रतिक्षण निरंश संवेदन प्रत्यक्षकी असिद्धि—जो दार्शनिक प्रतिक्षणवर्ती विभिन्न विभिन्न निरंश सम्वेदनको प्रत्यक्ष मानते हैं उनका यह मंतव्य युक्त नहीं बैठता क्योंकि जैसे अभी इस प्रकार प्रतिज्ञा की गई है कि समस्त सम्वेदन निरंश है, क्षण-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वर्ती हैं वह अनुभवमें नहीं आ रहा है वैसा शङ्काकारने माना नहीं। अनुभवमें आरहा है सम्वेदन स्थिर और सांशरूपसे सुख दु:ख आदिक बुद्धिस्वरूप स्थिर आत्माके प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है हर्ष और विषाद । जिस किसी भी पुरुषमें हर्ष अथवा विषाद उत्पन्न होता है उसे वह प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है और स्थिर आत्माके, जो द्रव्यापेक्षा शाश्वत है आत्मतत्त्वमें ही उस ही पर्यायका अनुभव हो रहा है। इसपर शङ्काकार कहता है कि यह अनुभव तो भ्रमपूर्ण है और हर्ष विषाद आदिकका अनुभव होता है और स्थिर आत्मामें अनुभव बताया है वह तो भ्रान्त है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि हर्ष विषाद आदिकका अनुभव भ्रान्त नहीं है क्योंकि इस अनुभवमें बाधक कोई प्रमाण नहीं है और फिर यह बताये शङ्काकार कि सुख दु:ख आदिक बुद्धिस्वरूप आत्माके जो हर्ष विषाद आदिक प्रत्यक्ष अनुभवमें आ रहे हैं और उनका भ्रान्त अनुभव उठता हो तो यह भ्रान्तपना सर्वथा है या कथञ्चित्? यदि कहोगे कि सर्वथा सब जगह सब समय यह भ्रान्ति चलती रहती है तब तो इसमें परोक्ष ज्ञानसे कोई विशेषता नहीं आई, जो बात परोक्षज्ञानमें चल रही थी वही बात अब सब ज्ञानोंमें मान ली गई है। तो इस प्रत्यक्षको क्षणिकवादी मान रहे थे तो उनके भी परोक्षज्ञानवादका प्रसङ्ग आ जाता है। तो सुख दु:ख बुध्यात्मक अनुभवमें आने वाले इस स्थिर आत्माके हर्ष विषाद आदिकको भ्रान्त माना जाय तो सर्वथा भ्रान्त माननेपर तो सदा वह परोक्षज्ञान बन जायगा और कथञ्चित् भ्रान्त माननेपर इतना तो स्पष्ट ही हो गया कि एकान्त नहीं रहा। स्वरूपमें भ्रान्त नहीं है पदार्थमें ही भ्रान्त है। यही तो कथञ्चित्का अर्थ है, सो यहाँ एकान्तकी हानि हो गई है और स्याद्वाद न्यायका प्रवेश हो गया है।

स्याद्वादन्यायके विरुद्ध भ्रान्ति अभ्रान्ति, प्रत्यक्षत्व, अप्रत्यक्षत्व आदिके निर्णयकी असंगतता सर्वत्र सर्वदा भ्रान्तिकी अप्रत्यक्षताकी समानता होनेसे केवल निर्विकल्प पदार्थ दर्शनमें ही परोक्षज्ञानसे समानता नहीं है किन्तु उसकी व्यवस्था करनेके कारणभूत विकल्प स्वसम्वेदनमें भी परोक्षज्ञानसे कोई अन्तर नहीं रहता, क्योंकि वहाँ भी यह विकल्प उठाया जायगा कि वह विकल्प सम्वेदन सर्वथा भ्रान्त है या कथञ्चित? यदि कहो कि वह विकल्प सर्वथा भ्रान्त है और भ्रान्त होनेपर भी प्रत्यक्ष है तो देखिये सर्वथा विकल्पसे भ्रान्तपना माननेपर बाहरकी तरह स्वरूपमें भी भ्रान्त की परोक्षता आ जायगी। तब प्रत्यक्ष अभ्रान्त होता है यह बात बाधित हो गयी। लो अब सम्वेदन स्वरूप भी भ्रान्त बन गया। यदि कहो कि विकल्प सम्वेदन कथंचित् भ्रान्त है तो इसमें स्याद्वादकी सिद्धि हो गई और स्याद्वादका निवारण करके यह दार्शनिक ठहर नहीं सका, सो इस कारण याने जिस कारण सर्वथा विकल्प भ्रान्त है या कथञ्चित्के विकल्प भ्रान्त है इन दोनों पक्षोंमें परोक्षज्ञानसे कोई अन्तर न रहनेके कारण अनेकान्तकी सिद्धि अनिवार्यरूपसे हो गई।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वसंवेदनकी अपेक्षासे सर्ववेदनोंमें अप्रमाणताका अभाव तथा बाह्यार्थ परिचयकी अपेक्षासे प्रमाण और प्रमाणाभासका निर्णय उक्त प्रकरणसे यह सिद्धान्त मान लेना चाहिए कि ज्ञानकी अपेक्षासे कोई ज्ञान सर्वथा अप्रमाण नहीं होता। अर्थात् ज्ञान अपने स्वरूपके सम्वेदनमें प्रत्यक्ष है और प्रमाणभूत है। हाँ बाह्य अर्थकी अपेक्षासे प्रमाण और प्रमाणाभासकी व्यवस्था की गई है क्योंकि बाह्य अर्थकी अपेक्षासे ज्ञानको सम्वादक और विसम्वादक कह सकते हैं। जैसे पड़ी तो थी सीप जाना चाँदी तो यह विपरीत ज्ञान हो गया ना, तो इतना विपरीत ज्ञान होकर भी जो चाँदी जान रहा है वह वचन अपने बोधकी ओरसे निर्भ्रान्त है। चाँदीको जानता हुआ भी वह चित्तमें यह समझ रहा है कि यह सही ज्ञान है। तो ज्ञानकी अपेक्षासे तो वह सम्वेदन प्रमाणभूत रहा। अब बाह्य अर्थकी अपेक्षासे देखा जाय तो वहाँ विसम्वाद है, वहाँ पदार्थ तो चाँदी नहीं है पर ज्ञान हो रहा है चाँदीका। तो बाह्य अर्थकी दृष्टिसे यह विपर्ययज्ञान कहलाया और ज्ञानकी दृष्टिसे कोई ज्ञान विपर्यय नहीं कहलाता। जिस समय जिस ही ढंगसे परिणति हो रही है अन्तरङ्गज्ञानमें वह तो सम्वादक है, सही समझ रहा है। जैसे कोई आकाशका केश और मसकका ज्ञान करे, यों ही आकाशमें किसी जगह ऐसा लगने लगना कि यहाँ बहुत लम्बे केश पड़ रहे हैं या यहाँ छोटे छोटे मच्छर उड़ रहे हैं अथवा कहीं केशका झुंड पड़ा हो वहाँ समझा कि ये सब मच्छर मंडरा रहे हैं तो इस स्वरूपमें भी ज्ञान करने वालेको सम्वाद नहीं है, संदेह आदिक नहीं है। तो आकाशमें केश आदिकका ज्ञान होना यह बाह्यमें विसम्वादक है ऐसा प्रमाणाभास है याने केश वहाँ नहीं हैं फिर भी जाना जा रहा है तो प्रमाणाभास हुआ, पर निजस्वरूपमें वह सम्वादक है तब वह केश या मच्छर समझ रहा है तो वहाँ सम्वाद है और प्रमाणभूत है। और ऐसे एक ही ज्ञानमें प्रमाण और अप्रमाणकी व्यवस्थाका विरोध भी नहीं है। जैसे सीपको चाँदी जाना जा रहा है तो ज्ञान तो एक है मगर स्वरूप सम्वेदनकी अपेक्षा प्रमाण है और बाह्य अर्थकी अपेक्षासे अप्रमाण है। तो एक ही ज्ञानमें प्रमाणपना और प्रमाणाभासपना ये विरुद्ध नहीं बैठते, क्योंकि जीव एक है और उसमें आवरणका दूर होना ये भिन्न भिन्न प्रकारके हैं। उससे सत्य आभासका सम्वेदन और असत्य आभासका सम्वेदन होनेकी परिणति सिद्ध होती है। जैसे कालिमा आदिक दोष स्वर्णसे दूर हो जायें तो स्वर्णकी उत्कृष्ट अवस्थाका परिणमन बन जाता है उस ही तरह जब जीवमें ज्ञानावरणका कुछ निराकरण हुआ तो उसके अनुसार सत्य और असत्य आभास सम्वेदन चलेगा, इस प्रसंगमें कोई यह नहीं कह सकता कि जीव ही नहीं है कुछ। क्योंकि जीवको ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। तो उसमें उत्तरमें स्वामी समंतभद्राचार्य कहते हैं।

जीव शब्दः बाह्यार्थः संज्ञात्वाद्धेतुशब्दवत्।
मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च मायाद्यैः स्वैः प्रमोक्तिवत् ॥८४॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव पदार्थकी सयुक्तिक सिद्धि— जीव शब्द बाह्य अर्थ सहित है अर्थात् जब जीव यह शब्द बना हुआ है तो यह निश्चित् हो जाता है कि इस जीव शब्दका विषयभूत अर्थ होना ही चाहिए याने कोई जीव शब्दका वाच्य पदार्थ है तब तो जीव शब्दकी उपपत्ति बनी है। तो जीव शब्द बाह्य अर्थसे सहित बर्तता है क्योंकि संज्ञा है, जो जो संज्ञा है, नाम है वह सब अपना वाच्यभूत अर्थ रखता है हेतु शब्दकी तरह। जैसे कि हेतु है तो वह अपने पक्षको लिए हुए है। त्रैरूप्यस्वरूप हेतु माना है। कोई पाँचरूप हेतु मानते हैं। किसी भी प्रकार कोई माने, जब हेतु शब्द है तो उसका वाच्यभूत अर्थ भी है। और भी देखिये ! माया आदिकके भ्रममें संज्ञायें बना करती हैं, वे भी अपने अर्थके साथ रहा करती हैं। माया शब्द कहा तो कुछ माया होती ही है। जैसे प्रमा अथवा प्रमाण वचन बोला तो समझो कि प्रमा भी कोई वास्तविक है और प्रमाण भी वास्तविक है।

देहसे अतिरिक्त जीवके सद्भावमें शङ्का और उसका समाधान— यहाँ कोई शङ्काकार कहता है कि जीव शब्द अर्थवान तो है मगर जीव शब्दका अर्थ है अपने शब्द स्वरूपसे अतिरिक्त जो शरीर इंद्रिय आदिकका पिण्ड है वह है जीव। इस कारण अनादि अनन्त अमूर्त ज्ञानमात्र कोई जीव निश्चित नहीं होता है। जो देहादिक हैं, इंद्रियका पिण्ड है बस वही जीव शब्दका अर्थ है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह तो विभ्रम और विह्वलताकी स्थितिमें कहना हुआ है शङ्काकारका इस शङ्काकारने लोकरूढ़िका आश्रय किया है। अलौकिकताका आलम्बन नहीं लिया है, लोकरूढ़िका है ? किसीने जीवका जो व्यवहार बनाया वही लोकरूढ़ि है। जैसे कहते हैं कि जीव गया जीव खड़ा हुआ, जीव ठहर गया तो ये बातें लौकिकजनोंकी व्यवहारकी हैं। गया, चला, ठहरा यह व्यवहार शरीरमें तो रूढ किया नहीं जा सकता क्योंकि वह अचेतन है और वह भोगका आधार है अर्थात् भोक्ता तो आत्मा है उसका आधार शरीर है इस कारणसे शरीरमें गया, चला, ठहरा आदिककी रूढि हो जाती है। इंद्रियमें भी गए चलनेकी रूढि नहीं बनती, क्य कि इन्द्रियाँ तो उपभोगके साधनमात्र ही हैं। इसी प्रकार शब्दादिक विषयोंमें भी गया चला ऐसा जीव जैसा व्यवहार नहीं होता। शब्दादिक विषय तो भोग्यरूप है इसलिए उनका व्यवहार उस ढंगसे ही होगा। तब फिर गया चला यह व्यवहार कहाँ हुआ ? तो कहते हैं कि भोक्ता आत्मामें ही जीव है यह रूढ़ि बनी। चलना बैठना, ठहरना आदिककी रूढ़ि भोक्ता आत्मामें बनायी गई है। शरीरादिकके कार्यभूत या शरीरादिक जिसके कार्य हैं ऐसे चेतनमें भोक्तृत्व भाव अयुक्त है, भोग क्रियाकी तरह। जैसे भोगरूप क्रिया चेतन में घटित नहीं होती, क्योंकि वह अचेतन शरीरके द्वारा किया गया कार्य है, अतः अचेतन है। तो यह रूढ़ि ही कहलायी। जो अमूर्त ज्ञानानन्द स्वरूप जीव है वह तो ज्ञानानन्दका परिणमन करता हुआ रहता है। वह चले, ठहरे, बोले ये सब व्यवहार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और रूढ़ियाँ है। अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि सुख दुःख आदिकका जो अनुभवन है वही भोग क्रिया कहलाता है और यह भोग क्रिया याने सुख दुःख आदिकका अनुभवन इस अन्वय और गर्भसे लेकर मरण पर्यन्त रहने वाले चेतन में जो सर्व चेतन विशेषमें व्यापी है वहाँ भोग क्रिया मानी जाती है और उस हीमें भोक्तृत्व भाव है, क्योंकि वह शरीरादिकसे विलक्षण है। शङ्काकारका यहाँ यह अभिप्राय है कि जो गर्भ से लेकर मरण पर्यन्त रहनें वाला पदार्थ है और जो सर्व चेतना विशेषमें रह रहा है उसमें भोगक्रिया मानी गई है। तो शरीरमें भोक्तृत्व भाव बने ऐसा दूषण नहीं आता, इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि ठीक ही कह रहे हो पर जो गर्भसे लेकर मरण पर्यन्त अन्वयी चेतन कहा जा रहा है बस वही आत्मद्रव्य है। जन्मसे पहिले और मरणके पश्चात् भी उस चेतनका सद्भाव पाया जाता है। यदि पूर्वापर चेतनका सद्भाव न माना जाय तो पृथ्वी आदिकके पिण्ड रूप शरीर और इंद्रिय विषयोंसे इसके चैतन्यस्वरूप आत्मामें अन्तर न रह सकेगा।

चेतनमें पृथ्वादिकार्यत्वका अभाव—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि पृथ्वी आदिकका कार्य चेतन है वह पृथ्वी आदिकसे विलक्षण बन जायगा सो यहाँ इस चेतनसे पृथ्वी आदिकका कार्य ही सिद्ध न किया जा सकेगा। इस कारण हमारा (शंकाकारका) यह कहना युक्त है कि चेतन पृथ्वी आदिकका कार्य है तो कार्य होनेके कारण पृथ्वी आदिकसे विलक्षण चेतन बन जायेंगे। अब इसका समाधान सुनिये ! प्रथम बात यह है कि चेतन पृथ्वी आदिकका कार्य नही है और पृथ्वी आदिकका कार्य बताकर पृथ्वी आदिकसे विलक्षणताकी बात नहीं कह सकते, क्योंकि यों तो फिर पृथ्वी आदिक कार्योंमें रूपादिकका समन्वय देखा जा रहा है। जो भी पृथ्वीका कार्य होगा उसमें पृथ्वीपनेके धर्म पाये जायेंगे। पर चेतनमें रूपादिक कहाँ पाये जा रहे। इस कारण चेतनको पृथ्वी आदिकक कार्य कहा जा रहा है वह संगत नहीं है।

चेतन और अचेतन पदार्थोंके अस्तित्वकी सिद्धि—इस प्रकरणमें यह सिद्ध किया जा रहा है कि जितने भी शब्द होते हैं उन शब्दोंके वाच्यभूत पदार्थ अवश्य हुआ करते हैं। मगर वाच्यभूत अर्थ न हो तो शब्दकी उपपत्ति भी नहीं बन सकती। अतः जितने भी शब्द हैं समझना चाहिए कि उन सबका वाच्यभूत कोई अर्थ अवश्य है। और जब शब्दोंका वाच्यभूत अर्थ बन गया तो वह अर्थ स्थिर है। उस अर्थका परिज्ञान करने वाला यह ज्ञानात्मक जीव है। सो अर्थ भी वास्तवमें है और यह ज्ञान भी वास्तवमें है। यह ज्ञान उन अर्थोंको जानता है तो वहाँ दो धारायें बनी हुई हैं कि ज्ञान अपने आपको भी समझ रहा है और बाह्य विषयभूत पदार्थोंके विषयमें भी समझ रहा है। तो यों यह एकान्त नहीं कर सकते कि केवल विज्ञानमात्र अन्तरङ्ग अर्थ ही परमार्थ है, पुद्गल आदिक बाह्य अर्थ परमार्थ नहीं हैं। अथवा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुद्गल आदिक बाह्य अर्थ ही परमार्थ है, अन्तरङ्ग विज्ञान स्वरूप परमार्थ नहीं है। ये दोनों एकान्त घटित नहीं होते। अत: यही मानना होगा कि ज्ञानकी अपेक्षासे तो ज्ञानमात्र तत्त्व है और वहाँ विपर्यय नहीं है। बाह्य अर्थकी दृष्टिसे ज्ञानमें विपर्ययपना और सम्यकपनाका परिचय किया जाता है।

चेतन अचेतनोंमें सत्त्वादिका समन्वय होनेपर भी असाधारण धर्मकी अपेक्षासे भेदकी सिद्धि शंकाकार कहता है कि जैसे पृथ्वी, जल अग्नि आदिकमें सत्त्व है उसी प्रकार चेतनमें भी सत्त्व है। तो ऐसे सत्त्व वस्तुत्व आदिककी दृष्टियोंसे यदि समन्वय हो जाता है तब चेतन भी पृथ्वी आदिकसे अत्यन्त भिन्न पदार्थ न रहेगा। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि पदार्थमें असाधारण धर्मकी दृष्टिसे तात्त्विक भेद होनेपर भी सत्त्वादिक सम्भव होता है इस कारण सत्त्वादिक सम्भव है ऐसा कहकर उनमें अभेद सिद्ध नहीं किया जा सकता। अब यहाँ शंकाकार कहता है कि पृथ्वी आदिक जो तात्त्विक भेद वाले पदार्थ हैं उनमें एक विकारीपनका समन्वय नहीं है इस कारण पृथ्वी आदिकमें तो भेद ही है। पृथ्वी जैसे अपने आपमें विकार किया करती है वैसे विकार जल आदिकमें तो नहीं हैं। पृथ्वीके विकार और तरहके हैं, अग्नि वायु आदिके विकार अन्य तरहके हैं तो एक विकारीपनका समन्वय नहीं है इस कारण पृथ्वी आदिकमें भेद ही है। जैसे कि नैयायिकोंके सिद्धान्तमें प्रागभाव आदिक चार अभावोंमें भेद ही माना है, प्रागभाव आदिक भेदोंमें परस्पर अभावरूप एक विकारका समन्वय होनेसे जैसे वहाँ सर्वथा भेद माना है इसी प्रकार पृथ्वी आदिक तत्त्वोंमें एक विकारीपन न होनेसे भेद ही है। तो इस शंकाके उत्तरमें पूछते हैं—तो फिर क्या चेतन और पृथ्वी आदिक भूतोंमें एकविकारी पनका समन्वय है? वह तो नहीं है। फिर चेतन पृथ्वी आदिकसे भिन्न हो ही तो गए। वहां भेद नहीं रह सकता, ऐसा कैसे कहा जा रहा है? याने चेतन तत्त्व विलक्षण भिन्न चीज है और पृथ्वी जल आदिक भिन्न चीजें हैं। इस कारण एकविकारीपनके समन्वयका अभाव होना सो भिन्नता है और वही तत्त्वान्तर है। तब यह बात चैतन्यमें भिन्नताको सिद्ध करती है, और अनादि अनन्तपनेको सिद्ध करती है। याने चेतन पृथ्वी जल आदिकसे भिन्न है और अनादि कालसे अनन्तकाल तक रहता है।

जीवका स्वतन्त्र अस्तित्व – यहाँ मुख्यतया चार्वाक शङ्काकार ऐसे है जो जीवको बिल्कुल नहीं मानते। उनका कहना है कि जैसे घड़ीके पेंच पुर्जे इकटठे कर दिए गए तो घड़ी चलने लगती है इसी तरह पृथ्वी, जल, अग्नि वायु आदि इकटठे हो गए तो वहाँ जानना, देखना, चलना आदिक बनता है, किन्तु उनका इस तरहका अभाव रखना मिथ्या है। घड़ीके पेंच पुर्जे मिल जायें तो जो क्रिया होगी वह घड़ीके ढगसे ही तो होगी। इसी प्रकार पृथ्वी जल आदिक मिल जायें तो उनमें जो क्रिया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होगी, उनके अनुरूप ही तो होगी। समझ ज्ञान यह कैसे आ जायगा? तो यह चेतना ये ज्ञान दर्शन पृथ्वी आदिक भूतसे भिन्न हैं और जब जीव शब्द बोला जा रहा है तो समझना चाहिए कि जीव कोई अवश्य है अन्यथा यह शब्द आता कहाँसे? अनादि अनन्त चैतन्यसे सहित शरीरमें जीवका व्यवहार फिर क्यों हुआ? कोई यदि ऐसी आंशङ्का करे तो सुनो! उस प्रकारके चेतन विशिष्ट कार्यमें अर्थात् पशुपक्षी मनुष्य आदिकके जो ये शरीर दिख रहे हैं इन शरीरोंमें अनादि अनन्त असाधारण धर्म वाला जीव रह रहा है तो ऐसे जीवसे युक्त शरीरमें जो जीवका व्यवहार किया जाता है वह चेतन और शरीरमें अभेदका उपचार करके ही व्यवहार है। पदार्थ तो भिन्न-भिन्न हैं, चेतन जुदा तत्त्व है, शरीर जुदा है, और, शरीरमें चूंकि चेतन है तब उन दोनोंमें जब अभेदका उपचार किया गया तो शरीरमें भी जीव जीव इस प्रकारका व्यवहार चल उठा है।

क्षणिक चित्तसन्तानमें जीवत्वके व्यवहारका शंकाकारका आशय व उसका समाधान—अब यहाँ क्षणिकवादी बौद्ध कहते हैं कि पृथ्वी आदिकके पिण्ड शरीरमें तो जीवका व्यवहार ठीक नहीं, पर क्षणिक जो चित्तसंतान हैं, ज्ञानक्षण हैं उनमें जीवका व्यवहार करना युक्त है। इस शङ्काके उत्तरमें केवल इतना ही ध्यान दिलाया जा रहा कि क्षणिक चित्तसंतानमें जीवका व्यवहार करना यह पूर्व प्रकरणमें अनेक बार खण्डित कर दिया गया है। न तो चेतनकी क्षणिकता सिद्ध होती और न उनका संतान सिद्ध होता, किन्तु जीव नामक पदार्थ है और वह ज्ञानस्वरूप है। उसमें जीवका व्यवहार है। इस प्रकरणसे यह मान लेना चाहिए कि जीव शब्द बाह्य अर्थ को साथ लिए हुए है कर्तृत्व और भोक्तृत्व ही जिसका उपयोग स्वभाव है याने जीव करता क्या है, भोक्ता क्या है, वह भी जीवके ही स्वरूपमें है। तो कर्तृत्व और भोक्तृत्वरूप उपयोग स्वभाव वाले जीवके ही साथ यह यहाँ बताया जा रहा कि जीव शब्द बाह्य अर्थ सहित है। तो यहाँ जो साध्य सिद्ध किया जा रहा है उसके लिए जो हेतु दिया गया है कि संज्ञा होनेसे, नाम होनेसे जो जो नाम है वे वे पदार्थ अवश्य हैं। तो इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं आता है।

'जीवशब्दः सबाह्यार्थः संज्ञात्वात्' इस अनुमानमें प्रयुक्त हेतुकी निर्दोषताका वर्णन—अब शङ्काकार कहता है कि जीव पदार्थकी सिद्धि करनेके लिए जो यह अनुमान बनाया है कि जीवनामक पदार्थ अवश्य है क्योंकि उसमें जीव शब्द बोला जा रहा है संज्ञा होनेसे, तो संज्ञा अर्थात् नाम होनेसे इस प्रकारका जो हेतु कहा गया है वह विरुद्ध हेतु है, क्योंकि संज्ञा नाम तो वक्ताके अभिप्रायभरको सूचित करता है, उससे बाह्य पदार्थकी सिद्धि नहीं हो जाती। यहाँ साध्य बताया जा रहा है कि बाह्य अर्थ सहित है लेकिन उससे विरुद्ध साध्य सिद्ध होता है याने शब्दसे नामको बोलने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वालेका अभिप्राय मात्र ही समझा जाता है, क्योंकि संज्ञा बोलने वालेके अभिप्रायसे ही व्याप्त है। इस शङ्काका भाव यह है कि ये क्षणिकवादी बौद्ध यह कह रहे हैं कि जो नाम है उस नामसे पदार्थ नहीं जाना जाता, किन्तु बोलने वालेका अभिप्राय जाना जाता है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह शङ्का सङ्गत नहीं है। संज्ञा वक्ताके अभिप्राय मात्रकी सुचना दिया करती है यह बात प्रमाणबाधित है, उसका अनुमान प्रयोग है कि संज्ञा अभिप्राय मात्रकी सूचना नहीं करती, क्योंकि अभिप्राय मात्रकी सूचना करने वाली सज्ञाओंसे अर्थक्रियामें प्रवृत्ति नहीं बन सकती, संज्ञा भासकी तरह। जैसे किसी पुरुषने दूरसे चमकने वाली रेतमें पानी कह दिया तो उसके कहनेसे कहीं कोई पानी तो नहीं पी लेता ? है ही नहीं। जितने भी नाम बोले जाते हैं वे नाम यदि वक्ताके अभिप्राय भरकी बात कहें, बाहरमें कोई चीज है उसका संकेत न करके तब फिर उसमें प्रवृत्ति कैसे बनेगी ? जैसे किसीने कहा कि भोजन लाओ तो ऐसा बोलने वालेके अभिप्राय मात्रका ही ज्ञान अगर हो तो न भोजन आ सकेगा न कोई खा सकेगा। तो जितनी भी संज्ञायें हैं वे केवल अभिप्राय भरको सूचित नहीं करतीं, किन्तु उनका वाच्य कोई बाह्य पदार्थ अवश्य होता है। संज्ञामें अर्थक्रियाके नियमका अयोग नहीं है। संज्ञाके द्वारा पदार्थको जानकर प्रवृत्ति करने वाले पुरुषोंके अर्थ क्रियाका नियम देखा जा रहा है कोई किसीको कुछ भी हुक्म देता है तो उन शब्दोंसे उसने अर्थ जाना फिर उस ज्ञानमें जुट जाता है। तो संज्ञा बाह्य अर्थको बताती है, इसमें कोई संदेह न करना चाहिए।

इन्द्रिय सम्बन्धित ज्ञानसे पदार्थ परिचयकी तरह संज्ञा शब्दसे भी पदार्थ परिचयका संकेत—जैसे कि इन्द्रिय सम्बन्धित ज्ञानसे पदार्थका परिज्ञान होता है इसी प्रकार संज्ञा शब्दके द्वारा भी पदार्थका परिज्ञान होता है और जब संज्ञा शब्दके द्वारा भी पदार्थका परिज्ञान होता है—चक्षु इन्द्रियसे कुछ देखा तो वहाँ पदार्थ जाना ही तो गया। इसी प्रकार शब्दसे कुछ सुना तो उससे भी पदार्थ जाना ही तो गया है। यदि इन्द्रियजन्य ज्ञानोंसे पदार्थका परिज्ञान न हो तो ऐसा इन्द्रिय ज्ञान कैसे आदरणीय होगा ? अर्थात् वह इन्द्रियज्ञान फिर अकिञ्चित्कर है। उसकी आवश्यकता ही क्या है ? तो इन्द्रियज्ञानसे भी पदार्थका बोध होता है ऐसे ही शब्दके ज्ञानसे भी पदार्थका बोध होता है। तो इस कारिकामें जो हेतु बताया गया है वह हेतु विरुद्ध नहीं है इसी कारण संज्ञापन जीव शब्दके सबाह्य अर्थपनेको सिद्ध करता है, अर्थात् जीव शब्द है तो उसके वाच्य बाह्य अर्थ भी अवश्य हैं हेतु शब्दकी तरह।

जीव शब्दके सबाह्यार्थत्वका "हेतु" द्वारा निर्दोष समर्थन—हेतुवादी सभी दार्शनिकोंने हेतु शब्दको बाह्य अर्थ सहित माना है। जो कुछ भी कोई हेतु देवे वही उनके हेतु शब्दका अर्थ है। तो जैसे हेतु शब्द है तो उसके वाच्य बाह्य अर्थ भी हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसी तरह जीव शब्द है तो उसका वाच्य जीव नामक अर्थ भी है। तो हेतु शब्द जैसे अपने वाच्यभूत हेतुको सिद्ध करता है यह दृष्टान्त जो दिया गया है वह यहाँ निर्दोष है, अन्यथा अर्थात् हेतु शब्द यदि वाच्य अर्थका बोध न कराये तो साधन और साधनाभासमें कोई भेद न रहेगा। साधन नाम है हेतुका, तो हेतु शब्द साधनको बताता है यह बात नहीं मानते तो साधन और साधनाभास झूठा हेतु और सही हेतु इनमें फिर भेद क्या रहेगा ? हेतु और हेत्वाभास ये दो शब्द साधन और साधनाभासका निश्चय कराते हैं। जब हेतु शब्दको बाह्य अर्थवाला न मानोगे तो फिर हेतु और हेत्वाभासमें कोई भेद न रहेगा, क्योंकि अब जो वक्ताके अभिप्राय मात्रकी सूचना किया करता है शब्द, यही रटन यहाँ लगा दी जाय तब बाह्य अर्थपनेकी बात नहीं रहती। तो जिसको साधन और साधनाभासमें अन्तर करना है उसे वचनोंसे परम्परासे भी परमार्थ भूत मानना चाहिए। अर्थात् वचन वास्तविक हैं और प्रत्येक वचनोंका वाच्य पदार्थ है यह बात मान लेना चाहिए।

भले प्रकार विवेचित शब्दादिमें व्यभिचारका अभाव— शंकाकार कहता है कि कहीं कहीं इस हेतुका व्यभिचार भी तो देखा जाता है। जैसे हो तो सफेद रेत और दिखती है यह पानी जैसी तो उसे देखकर यदि कोई पानी कहदे तो पानी नाम पानी बाह्य अर्थको बताने वाला न रहा। क्योंकि जिसके लिये पानी इस शब्दका संकेत किया है वह पानी तो नहीं है किन्तु मरीचिका है, सफेद रेत है। तो कहीं कहीं संज्ञाका व्यभिचार देखा जाता है इसलिए संज्ञाके वाच्य अर्थमें अब विश्वास न रहा। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि किन्हीं किन्हीं जगहोंमें चक्षु आदिकसे उत्पन्न हुई बुद्धिमें भी अविश्वास बन जाता है दीखा तो कुछ और जाना गया कुछ। तब फिर समस्त ज्ञानोंमें भी विश्वास न करो यदि कहीं आँखोंसे देखकर सीपको चाँदी जान गए तो जब एक जगह व्यभिचार हो गया नेत्र इन्द्रियज ज्ञानका तब फिर सभी जगह विश्वास मत करो। शंकाकार कहता है कि सीपमें रजतका ज्ञान हुआ तो उसे तो हम ज्ञानाभास कहते हैं। वह सही ज्ञान नहीं है इस कारण वहाँ विश्वास न रहा। तो इसके उत्तरमें यही बताओ कि धूम आदिसे अग्नि आदिकका ज्ञान फिर किस तरह होगा ? क्योंकि कार्य कारण भावमें भी व्यभिचार देखा जाता है और यह बात असत्य नहीं है। याने कार्य कारण भावमें व्यभिचारकी बात देखिये ! अग्नि जैसे काठ आदिकसे उत्पन्न हुई अग्नि है उस ही तरह सूर्यकान्त आदिक मणियोंसे उत्पन्न हुई या मणि ही उस ही प्रकारकी अग्नि है तो अब देखिये ! कि अग्नि काठ आदिकसे ही, यह बात तो न रही या अग्निसे धुवाँ निकलता ही हो यह बात तो न रही। मणिकी अग्निमें कहाँ धूम है ? और वह काठ आदिकसे कहाँ उत्पन्न हुई है ? तो वहाँ व्यभिचार देखा गया तब फिर अनुमान प्रयोग भी सारे विश्वासके अयोग्य बन जायेंगे। यदि शंकाकार यह कहे कि अच्छी तरहसे विवेकपूर्वक सोचा जाय तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कार्य कारणमें व्यभिचार नहीं आता, तो उत्तरमें कहते हैं कि यहाँ भी यह समझिये कि संज्ञा और संज्ञाके वाच्यकी विशेष परीक्षा की जाय तो वहाँ भी अच्छी तरहसे विवेचन किया गया शब्द पदार्थसे व्यभिचारित नहीं होता है। इस तरह शब्दमें भी शब्दकी विशेष परीक्षा कर लीजिए, क्योंकि कार्य कारण भावमें और शब्दमें इस प्रसंगमें कोई विशेषता नहीं है।

अपरीक्षितके व्यभिचारसे सुपरीक्षितमें व्यभिचार बतानेकी असंगतता यहाँ शङ्काकार कहता है कि शब्दके विषयमें परीक्षा तो स्पष्ट ही है। जब वक्ता नाना प्रकारके हैं और अनेक प्रकारका उनमें रागद्वेष भरा हुआ है तो वचन बोलने वालेके अभिप्राय नाना प्रकारके हैं, इस कारण कभी शब्दमें व्यभिचार भी देखा जाता है। अर्थात् शब्द बोले गए कुछ और उनका अभिप्राय है और कुछ! तब शब्दसे वही बाह्य अर्थ परखा जाय यह बात न बनेगी। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि शब्द में तो इस शङ्काके नाना अभिप्राय बताकर व्यभिचार बताया, पर शब्दसामग्री अर्थात् जो अन्य प्रत्यक्षज्ञान और अनुमानज्ञानकी सामग्री है अर्थात् इंद्रियज ज्ञान और अनुमानज्ञानकी जो कारण सामग्री हैं उनमें भी तो नाना शक्तियाँ मान रहे हैं शङ्काकार, तो वहाँ भी अनेक स्थलोंमें व्यभिचार आता है अर्थात् दीखता कुछ है और वस्तु कुछ है। अनुमान किसीका किया जा रहा है, बात वहाँ अन्य कुछ सिद्ध होती है। तो यों इन्द्रियजज्ञान और अनुमानज्ञानकी सामग्री भी नाना शक्तियोंसे भरी हुई है। ऐसा मानने वाले क्षणिकवादियोंके प्रत्यक्ष और अनुमानमें भी विश्वास कैसे किया जा सकेगा? जब इन सभी स्थानोंमें विश्वास न किया जा सका अर्थात् शब्दसे कोई पदार्थ जाना जाय इसमें भी व्यभिचार है, प्रत्यक्षसे कोई पदार्थ समझा वहाँ भी दोष है, अनुमानसे समझा वहाँ भी दोष है, तब तीनों जगह दोषकी समानता होने पर भी क्षणिकवादी शंकाकार प्रत्यक्ष और अनुमानके सम्बन्धमें दोष होते हुये भी संतुष्ट रह रहा है। और संज्ञा सम्बन्धित व्यभिचारमें प्रद्वेष करनेमें बादशाह बन रहा है। तो मालूम होता है कि यह शंकाकार परीक्षाका क्लेश लेश भी सहन नहीं कर सकता।

शब्दके विषयमें भावाभावात्मकताकी सिद्धि अब यहाँ क्षणिकवादी शंकाकार कहते हैं कि देखिये इन्द्रियज ज्ञान और अनुमान ज्ञान और अभिधान याने शब्द द्वारा पदार्थका संकेत होना इन तीनोंमेंसे संज्ञाकी बात यह है—कि वह अभाव उपादान वाली है। याने नाम जो कुछ भी बोला जाता है उसका उपादान अभाव है। क्योंकि शब्दका अर्थ अन्यापोह है। जैसे किसीने घोड़ा कहा तो घोड़ा शब्दसे घोड़ा न जाना जायगा। किन्तु घोड़ाके सिवाय अन्य कुछ चीज नहीं है यह समझा जायगा। तो यों शब्द जब अन्यापोहका ही अर्थ रखता है तो शब्दोंका संज्ञाओंका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपादान अभाव कहलायगा। तो अन्यापोहरूप अभाव जिसका उपादान है ऐसा संज्ञा में यदि प्रद्वेष किया जाय तो वह तो परीक्षा करने वाला ही है, उसे अटपट कैसे कहा जा सकेगा? क्योंकि यहाँ शब्दके सम्बन्धमें परीक्षा करें तो यह सिद्ध होगा कि शब्द यथार्थतः पदार्थके वाचक नहीं हैं। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह शंका बिना विचारे ही कही हुई है। कोई भी संज्ञा सर्वथा अभाव उपादान वाली नहीं है। संज्ञा यदि भाव उपादान वाली न हो सर्वथा तो उसका अभाव उपादान भी सिद्ध नहीं हो सकता। याने जैसे घोड़ा कहा तो घोड़ाका अर्थ यदि यह घोड़ा नामका पशु बने तो वह भी न समझा जा सकेगा कि घोड़ाके सिवाय अन्य कोई चीज नहीं है। वस्तुकी समझ भाव और अभाव दोनोंके आश्रय है। यह घोड़ा है इस तरह भावरूप समझ भी वहाँ है। सभी जगह भाव स्वरूप उपादान यदि सम्भव है तब ही उन संज्ञाओंकी यह बात बनती है कि वहाँ अन्यके अभावके उपादानकी भी बात है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभावसे सद्भूत है और अन्य पदार्थके स्वभावसे असद्भूत है। तब यह कहना कि शब्द केवल अन्यापोहको ही कहता है या शब्द अभाव उपादानके आश्रयसे है ये बातें असंगत हैं और निराकरण इसका बहुत विस्तारपूर्वक इसी ग्रन्थमें किया ही गया है।

वासनाके मन्तव्यमें भी बाह्य अर्थके सद्भावकी सिद्धि—अब इसी कथनसे यह कथन भी निराकृत हो जाता है जैसा कि क्षणिकवादी सौगतोंने कहा है कि अनादि वासनासे उत्पन्न हुये जो विकल्प हैं उन विकल्पोंसे ही कल्पना किए गए शब्द अर्थ तीन प्रकारका धर्म है जो कि सत्त्व असत्त्व और उभयके आश्रित है। शङ्काकारका इस शङ्कामें यह अभिप्राय है कि ये जो कुछ पदार्थ दीख रहे हैं, समझमें आ रहे हैं ये वास्तविक पदार्थ नहीं हैं, किंतु अनादिकालसे ऐसी ही समझकी वासना बनी है जिससे एक विकल्प उत्पन्न हो रहा और उस विकल्पमें ही ये पदार्थ कल्पित होगए। सो ऐसा ही शब्दका अर्थ है और वह अर्थ सद्भाव असद्भाव और उभयरूप है। जैसे घट बोला, तो यह घट नाम घटरूप पदार्थके आश्रय है और पररूप कपड़ा आदिकके असत्त्वसे उत्पन्न हुआ है। यों भावसे पहिले अभाव दोनोंके आश्रित है। यह कथन भी निराकृत हो गया है, क्योंकि यदि परमार्थतः शब्दको भावके आश्रय न माना जाय अर्थात् शब्दका अर्थ कोई चीज है, इस तरह न माना जाय तो वासनासे उत्पन्न हुए भावकी आश्रयता भी नहीं बन सकती। यहाँ शङ्काकारका यह अभिप्राय था कि जैसे घोड़ा शब्द कहा तो यद्यपि इस घोड़ा शब्दसे सीधा घोड़ा भी जाना गया लेकिन यह वासनाकी वजहसे जाने गए विकल्पसे जाना। वास्तवमें तो घोड़ाके सिवाय अन्य कुछ नहीं है, यह अन्यापोह याने अभाव परखा गया है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यदि भाव नहीं परखा गया परमार्थरूपसे तो वासनासे उत्पन्न कराये गये विकल्पसे भी वह सद्भाव न जाना जायगा, क्योंकि सभी जगह वासना अनुभवपूर्वक होती है। किसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चीजकी वासना जो बनती है वह अनुभवपूर्वक बनती है। अनुभव न हो तो वासना नहीं बनती। तो यों परम्परासे वासनाने भी वस्तुका ही तो यथार्थ परिचय कराया। वासना अनुभवपूर्वक हुई और अनुभव अर्थके प्रतिबंधका अर्थात् वास्तविक स्वरूपका जाननेवाला होता है। तो यों वासना माननेपर भी यह मानना होगा कि शब्दका अर्थ वास्तविक कोई पदार्थ है।

वासनाकी सर्वथा अवस्त्वाश्रयिताका निराकरण अब यहाँ शंकाकार कहता है कि पूर्व-पूर्व वासनासे ही उत्तर-उत्तर वासनायें बनती चली जाती हैं। तो वासनाकी कोई आदि ही न रही। जब वासनाकी कोई आदि न रही तो इसका अर्थ यह बना कि वासना किसी वस्तुके आश्रय नहीं है, वह तो यों ही कल्पनावश होती चली जा रही है। यों वासना अवस्तुके आश्रय ही है यह सिद्ध होता है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शब्दवासना भी जब अनादि बन गई अर्थात् जब कोई आदि न हो सकी तो दूसरोंके लिए जो अनुमान करते हैं और उसमें शब्द बोले जाते हैं तो वह वासना भी अवस्तुके आश्रय हो गयी तब वहां साधनका लक्षण यह है यह हेतु है ऐसे उपदेशका निमित्त अब वासना न रही तब हेतुका लक्षण भी सिद्ध न हो सकेगा। शंकाकार कहता है कि त्रिरूप हेतुका जो कथन है वह परम्परासे वस्तुके आश्रय है। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे। इस अनुमानमें जो धूम हेतु कहा है वह त्रिरूप हेतु है। मायने पक्षमें रह रहा है सपक्षमें रह रहा है और विपक्षमें नहीं है। ऐसे तीन लक्षण वाले हेतुका जो यह कथन हुआ है वह परम्परासे धूम वस्तुके आश्रय है। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह जब हेतु शब्दको वास्तविक पदार्थके आश्रय मान लिया याने हेतु शब्द वास्तविक हेतुको बता देता है तो ऐसे ही यह मान लीजिए कि जीव शब्द वास्तविक जीवको बता देने वाला है याने जीव शब्द जीवके आश्रयसे प्रयुक्त किया गया है।

जीव पदार्थसे अनुभूतिकी सिद्धि—और भी देखिये! यहाँ भाव है हर्ष विषाद आदिक अनेक प्रकारके परिणमन। जीवमें हर्ष होता, शोक होता आदिक नाना प्रकारके परिणमन हैं उन्हें हो तो भाव कहते हैं। सो ये सब भाव प्रत्येक आत्माके अनुभवमें आ रहे हैं और प्रत्येक शरीरमें भिन्न-भिन्न रूपसे अनुभवमें आ रहे हैं। हमारे हर्ष विषादोंको हम ही अनुभवमें लाते हैं। दूसरे दूसरे शरीरोंमें जो चेतन हैं वे अपने अपने भावोंको अनुभवमें लाते हैं, तो यह बात निराकृत नहीं की जा सकती है। तो इस प्रकारका यह जो भाव है वह आत्माके खण्डन करने वाले दार्शनिकोंको समझा देता है। याने अनुभवसिद्ध बात उन नास्तिकोंको प्रतिबुद्ध कर देता है कि नहीं, भाव है और भावका आश्रयभूत जीव है। और उसी जीव पदार्थको जीव शब्दने बताया है। तो जब अनुभव ही जीवकी सत्ताको स्पष्ट बता देता है, तब और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अधिक प्रयास करना व्यर्थ है। अपने अपने अनुभवसे समझ लो कि मैं जीव हूं, इसी कारणसे इस हेतुमें अन्य कालात्ययापदिष्ट दोष नहीं लगता। क्योंकि पक्ष प्रत्यक्ष आदिकसे अवांछित है, यह दोष कहलाता है तब पक्षकी ही सिद्धि नहीं होती। जैसे पर्वत तो है ही नहीं और अनुमान करने लगे कोई कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होने से तो पक्ष ही नहीं है तो साध्य साधन कहाँ बताओगे ? इस हीको कहते हैं कालात्यापदिष्ट। सो यहाँ यह दोष नहीं है। क्योंकि पक्ष प्रत्यक्ष आदिकसे अबाधित है। यहाँ अनुमान प्रयोग यह किया गया है कि जीव शब्द अपने बाह्य अर्थको लिए हुए हैं। तो यहाँ पक्ष है जीव शब्द। तो यह जीव शब्द बाह्य अर्थको लिए हुए है यह बाधित नहीं है।

जीव शब्दकी जीवस्वरूपसे विपरीतकी अवाचकता हाँ यह बात अवश्य है कि विपरीतबुद्धि रखने वाले पुरुषोंने दार्शनिकोंने जिस तरहके जीवकी कल्पना की है उस तरहके अर्थ वाला जीव शब्द नहीं है। जैसे कि कोई दार्शनिक कहता है कि जीव निरतिशय है अर्थात् जीव नित्य अपरिणामी है, उसमें कोई बात प्रकट नहीं होती। ज्ञान सुख दुःख आदिक कोई भी परिणमन जीवमें नहीं हुआ करते। जीव तो ध्रुव अपरिणामी है ऐसा कोई दार्शनिक जीवको निरतिशय मानता है। कोई पुरुष जीवको अस्वसम्विदित मानता है अर्थात् जीव स्वयं अपने आपको कुछ समझता नहीं है। जीव और ज्ञानके समझनेके लिए कोई अन्य युक्तियाँ देनी पड़ती हैं। ऐसा अस्वसम्विदित मानने वाले नैयायिक द्वारा अभिमत जीवकी बात नहीं कही जा रही है। जैसे कि निरतिशय मानने वाले सांख्यों द्वारा अभिमत जीवकी बात नहीं कही गई। कोई पुरुष मानता है कि जीव सारे शरीरमें अभिन्न एक है। जितने पुरुष पशुपक्षी कीट आदिक देखे जा रहे हैं उन सबमें एक ही जीव है, न्यारे न्यारे जीव नहीं है ऐसा ब्रह्मवादी मानते हैं जो कि अनुभवसे बाधित हो जाता, एक शरीरमें रहने वाले जीवके जो अनुभव है वह उस हीमें है। दूसरे शरीरमें रहने वाले जीवके अनुभय उस हीमें हैं। यदि एक ही जीव होता सारे शरीरमें तो किसी शरीरमें जो कुछ अनुभव होता वही अनुभव सबको होना चाहिए था। किन्तु ऐसा तो है ही नहीं। इससे ही सिद्ध है कि जीव अनन्त हैं और सब अपने-अपने अनुभवमें हैं, लेकिन ये दार्शनिक समस्त शरीरोंमें अभिन्न एक जीव मानते हैं। सो ऐसे जीव पदार्थका वाचक जीव शब्द है यह नहीं कहा जा रहा। कोई दार्शनिक कहता है कि जीव प्रतिक्षण निराला निराला है। एक जीव हो और वह कुछ सेकेण्ड टिक सके सो नहीं है। प्रत्येक समयमें जीव अन्य अन्य पैदा होते हैं और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाते हैं ऐसे क्षणिकवादियों द्वारा अभिमत जीव अर्थकी बात नहीं कही जा रही, क्योंकि ये सब निराकरणके योग्य हैं। यह सर्व युक्तिसंगत नहीं है, इस कारण ऐसे अभिमत जीव शब्द द्वारा जीव शब्दको बाह्य अर्थ सहित वाला नहीं कह रहे हैं किन्तु कथञ्चित्

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नित्य, कथञ्चित् अनित्य, प्रत्येक शरीरोंमें भिन्न भिन्न, किन्तु चैतन्य स्वरूपकी समानता वाले अपने आपका ही खुद सम्वेदन कर सके ऐसे जीव अर्थकी बात यहाँ कही जा रही है।

'संज्ञात्वात्" हेतुकी अनैकान्तिकदोषरहितता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि जो यह अनुमान प्रयोग किया है कि जीव शब्द अपने वाच्यभूत बाह्य अर्थ से सहित है, यहाँ बाह्यका अर्थ है जीव शब्दसे अतिरिक्त कोई अर्थ वाला याने जीव शब्द कहा तो उसका अर्थ केवल जीव शब्द ही नहीं जाना किन्तु कोई जीव नामका पदार्थ है, तो जीव शब्द जीव पदार्थका वाचक है संज्ञा होनेसे जो इसमें जो संज्ञात्व हेतु कहा गया है उसमें अनैकांतिक दोष आता है। अर्थात् संज्ञायें अनेक ऐसी हैं कि संज्ञायें तो हैं परन्तु उनका वाच्य पदार्थ कुछ नहीं है। जैसे माया भ्रान्ति यह भी तो नाम है। माया बहुतसे लोग बोलते भी हैं, पर माया नामकी चीज भी कुछ है क्या? भ्रम यह भी एक शब्द है, पर भ्रम नामका कोई पदार्थ भी है क्या? तो माया भ्रान्ति इन संज्ञाओंके साथ जिनका कि इन शब्दोंसे अतिरिक्त कोई अर्थ नहीं है उनके साथ अनैकांतिक दोष आता है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा अनैकांतिक दोष यहाँ सम्भव नहीं है क्योंकि माया भ्रान्ति इन संज्ञाओंका भी अपना अर्थ है। मायाका अर्थ माया है, भ्रान्तिका अर्थ भ्रम है। माया शब्द कहकर कुछ जाना ही तो गया कि क्या कहा जा रहा है? वही उनका अर्थ है। भ्रम शब्द कहकर समझा ही तो गया कि यह भ्रम है। तो ये संज्ञायें भी अपने अर्थके साथ हैं। जैसे कि प्रमाण शब्द अपने अर्थ के साथ है। प्रमाण, ज्ञान इसका अर्थ है। ज्ञान कहनेसे क्या जाना गया? ज्ञान जाना गया। तो ऐसे ही माया और भ्रम जाना गया। माया आदि संज्ञायें अपने अर्थसे रहित नहीं हैं, क्य कि इन शब्दोंको बोलकर भी कुछ विशिष्ट जानकारी हुई। तो विशिष्ट जानकारीके हेतुभूत होनेसे माया भ्रान्ति आदिक संज्ञायें अपने अर्थसे रहित नहीं हैं। जैसे कि प्रमाण संज्ञा, प्रमाण शब्द, ज्ञान शब्द ये किसी विशिष्टकी जानकारीके कारण बन रहे हैं इस कारण उनका भी अर्थ है। यदि भ्रान्तिका कोई अर्थ न माना जाय तो भ्रान्ति शब्द ही क्यों बोला गया? भ्रम है इस शब्दसे भ्रमका ज्ञान तो हुआ कि भ्रमकी बात कही जा रही है। यदि भ्रान्ति संज्ञाका कोई अर्थ न हो तो भ्रान्ति शब्द बोलनेसे फिर भ्रमकी जानकारी नहीं बन सकती। बोला तो भ्रम और जानकारी हो जाय शुद्ध ज्ञानकी, यह प्रसंग आ जायगा, इस कारणसे भ्रान्ति शब्द विशिष्ट अर्थकी प्रतिपत्तिका कारण है यह बात असिद्ध नहीं है।

शब्दोंकी विशिष्ट प्रतिपत्ति हेतुताका समर्थन—जिस प्रकार भ्रान्ति शब्दसे भ्रान्तिकी प्रतिपत्ति होनेके कारण विशिष्ट प्रतिपत्तिकी हेतुता यहाँ असिद्ध नहीं है इसी प्रकार प्रमाण शब्द भी प्रमाणपनेकी प्रतिपत्तिका कारण होनेसे यहाँ भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशिष्ट प्रतिपत्ति हेतुत्व असिद्ध नहीं है। यदि प्रमाण शब्दको उसके अर्थ विशेषसे रहित माना जाय तब प्रमाणसे तो ज्ञान हुआ नहीं, इसके मायने यह है कि भ्रान्तिकी प्रतिपत्ति हो बैठेगी ! इस दोषके निवारणकी इच्छा हो तो मानना चाहिए कि यहाँ "विशिष्ट प्रतिपत्तिका हेतु होना" यह हेतु असिद्ध नहीं है। यों जो प्रकृत बातको सिद्ध करनेके लिए दो दृष्टान्त बताये गए हैं माया भ्रान्ति आदिक नाम और प्रमाण नाम। ये दोनों दृष्टान्त साधन धर्मसे विकल नहीं हैं, इसी प्रकार कोई यदि ऐसी आशंका करे कि खरविषाण शब्दका तो कोई अर्थ है ही नहीं तो यह भी शंका उसे, दूर कर लेना चाहिए। खरविषाण आदिक शब्द भी अपने अर्थसे रहित नहीं है। खरविषाणका अर्थ है अभाव मायने खरविषाण न होना। तो यह शब्द भी अभाव-रूप अर्थको बताता ही है यों विशिष्ट प्रतिपत्तिकी हेतुता इन शब्दोंमें भी पायी जाती है अन्यथा यदि खरविषाण शब्दसे अभावकी जानकारी न बतायी जाय तो इसके मायने यह है कि फिर वह भाव वाचक शब्द बन जायगा। इस कारण इन किन्हीं भी शब्दोंके साथ इसका व्यभिचार नहीं आता। तब यह प्रकृत अनुमान निर्दोष है कि जीव शब्द अपनेसे अतिरिक्त जीव शब्दसे बाह्य अर्थका ज्ञान करानेका कारण है, क्योंकि संज्ञा होनेसे। इस तरह जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है और जीवका अस्तित्व सिद्ध होनेपर ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध हुआ। ज्ञानका अस्तित्व सिद्धिके साथ-साथ जगतके समस्त पदार्थोंका अस्तित्व सिद्ध होता है। अब इस विषयमें और भी सुनो—

बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचिकाः।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बकाः ॥८५॥

बुद्धि, शब्द और अर्थ इन तीन संज्ञाओंकी बुद्धि, शब्द और अर्थ इन पदार्थोंकी वाचकता—बुद्धि शब्द और अर्थ ये तीनों संज्ञायें बुद्धि, शब्द, अर्थके वाचक हैं। यहाँ कोई ऐसी आशंका कर सकता था कि केवल बाह्य अर्थ ही कुछ है अन्य कुछ नहीं है, पदार्थ ही शब्द द्वारा जाना जाता है, अन्य कुछ नहीं जाना जाता। सो ऐसी बात नहीं है। जितने ढंगके शब्द हैं उतने ही ढंगके वहां भाव होते हैं। बुद्धि शब्द और अर्थ ये तीन संज्ञायें हैं उन संज्ञाओंसे बुद्धि शब्द और अर्थका परिज्ञान होता हैं। बुद्धि मायने ज्ञान। ज्ञान शब्द द्वारा एक जानन प्रकाशका बोध होता है "शब्द' शब्द द्वारा जो कानोंसे सुना जाता है उन शब्दोंका ज्ञान होता है। अर्थ शब्द द्वारा जो यह भौतिक और चेतन आदिक सर्व पदार्थ हैं उन पदार्थोंका बोध होता है। ये तीनों बुद्धि, शब्द, अर्थके बोध कराने वाले हैं और वे बुद्धि, शब्द अर्थ ये तीनों ही वाच्यके नातेसे तुल्य बल वाले हैं।

बुद्धि, शब्द व अर्थ इन तीनमेंसे केवल एक अर्थकी वाच्यता माननेकी आरेका व उसका समाधान—यहाँ मीमांसक शङ्काकार कहता है कि पदार्थ शब्द

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और ज्ञान ये तो तुल्य नाम वाले हैं अर्थात् पर्यायवाची शब्द हैं। जीव पदार्थकी जीव यह संज्ञा होती है, और जीव यही नाम शब्दका है और जीव यही नाम बुद्धिका है। तो वहाँ कोई तीन अलग चीजें नहीं हैं। किन्तु वे सब एक तुल्य नाम वाले हैं। उन तीनोंका जब जीव नाम पड़ा तब जो अर्थ पदार्थक है वह ही जीव शब्द है, वह ही बाह्य अर्थसे युक्त है किन्तु बुद्धि और शब्द पदार्थ जीव शब्दके वाच्य नहीं हैं। जीव शब्दसे बुद्धिपदार्थ और शब्दपदार्थका ग्रहण नहीं होता, इस कारणसे जब जीव शब्द अर्थ पदार्थ वाला ही है ऐसे ही बाह्य अर्थ वाला है बुद्धि और शब्द पदार्थ वाला नहीं है तब इस हीके द्वारा हेतुका व्यभिचार हो गया। लो अब देखा लो बुद्धि और शब्द ये भी संज्ञायें हैं किन्तु इनका कोई पदार्थ नहीं है। संज्ञा तो सामान्य चीज है। संज्ञापन तो इन तीनोंमें घटित हो गया किन्तु है केवल एक जीव पदार्थ, बुद्धि और शब्द पदार्थ इनका वाच्य नहीं है, क्योंकि वे सब तुल्य नाम वाले हैं। उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह शङ्काकार भी समीचीन वचन बोलने वाला नहीं है। सभी जगह जितनी भी संज्ञायें हों उतने ही उसके वाच्य होते हैं, सभी संज्ञायें भिन्न भिन्न पदार्थोंकी वाचक हुआ करती है। बुद्धि, शब्द और अर्थ ये तीन संज्ञायें हैं तो जिस संज्ञाका जिकर करो उससे अतिरिक्त अन्य पदार्थका वह वाचक होता है। जैसे कि जिस उच्चारण किए गए शब्दसे निर्दोष रूपसे जहाँ बोध उत्पन्न होता है वह ही उस शब्दका अर्थ है। यदि उच्चारण किए गए शब्दसे जहाँ बोध होता वह अर्थ न बने, वह उस शब्दका वाच्य न बने तो शब्दके व्यवहार करनेका लोप ही हो जायगा फिर शब्द व्यवहारकी आवश्यकता ही क्या रही ?

बुद्धि, शब्द अर्थ इन तीन संज्ञाओंके वाच्यभूत बुद्धिपदार्थ, शब्द पदार्थ व अर्थ पदार्थका संकेत—यहाँ कोइ शंका करता है कि अर्थ पदार्थक शब्द से ही अर्थ पदार्थ सम्बोधित होता है वहाँ जीव शब्दसे ही जीव अर्थका ही बोध होता है। बुद्धि पदार्थक या शब्दपदार्थक बोध शब्दसे नहीं होता। फिर जीव शब्द बुद्धि और शब्द पदार्थ वाला कैसे कहा जा सकेगा ? और, वह जीव शब्द बुद्धि और शब्दका कैसे ज्ञान करा देगा ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये जिस प्रकार जीव शब्दसे जीव अर्थका बोध होता है। कोई कहता है कि जीवो न हंतव्यः अर्थात् जीव न मारे जाना चाहिए। जीवकी हिंसा न करना चाहिए। तो यहाँ जो जीव शब्द बोला गया वह अर्थ पदार्थक है याने अर्थ पदार्थ जिसका वाच्य है ऐसे जीव शब्दसे जीव पदार्थका बोध होता है उसी प्रकार बुद्धिपदार्थक जीव शब्दसे बुद्धि अर्थका ज्ञान होता है। जैसे किसीने कहा कि बुद्धिपदार्थक जीवसे जीव जाना जाता है तो यहाँ बुद्धि अर्थका बोध हुआ और इसी तरह जी, व इन दो शब्दोंको किसीने देखा तो यह शब्द पदार्थक जीव शब्द हैं, उससे शब्दका बोध हुआ, इससे सिद्ध होता है कि तीन संज्ञाओंके तीन अर्थ हैं, क्योंकि प्रतिबिम्बक जो ज्ञान हैं वे तीन प्रकारके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो रहे हैं और यह बात तो सर्वत्र घटित हो जाती है। प्रत्येक सत् तब जाना जाता है, तब उसे बताया जाता है जब वहां बुद्धि, शब्द और अर्थ ये तीन बातें आती हैं।

उदाहरणसहित बुद्धि, शब्द और अर्थका निर्देशन—जैसे कोई उपदेश करे कि पुत्रसे मोह न करना चाहिए। तो जो लोग पुत्रसे मोह करते हैं तो वहाँ यह बतायें कि वस्तुतः वे किस पुत्रसे मोह करते हैं? वहाँ पुत्र तीन प्रकारके हो जाते हैं, एक तो पुत्र शब्द, पु और त्र ये दो शब्द इकट्ठे हो गए वह ही हुआ पुत्र शब्द तो शब्दसे मोह नहीं करता। जो मनुष्य है, पुत्र है वह हुआ अर्थपुत्र। तो यहाँ कहा जा सकता है उपचारसे कि इस पुत्र पदार्थमें मोह किया जाता है। पर जब यह प्रश्न सामने आ गया कि वह पुत्र पदार्थ तो बहुत दूर भिन्न क्षेत्रमें है और मोह करने वाला यह जीव बहुत दूर भिन्न क्षेत्रमें है तो इसका कुछ भी परिणमन अपने आत्म क्षेत्रसे बाहर कैसे पहुंच जायगा? मोह करने वाला पुरुष अपने आत्म क्षेत्रसे बाहर अपनी कुछ भी परिणति नहीं कर पाता। तो वहाँ वास्तविकता यह आई कि उस पुत्र अर्थका विषय करके जो इसका पुत्रविषयक ज्ञान चल रहा है, जो भी पुत्रविषयक बुद्धि हो रही है, रागी होनेके कारण वह इस ही विकल्पमें मोह कर रहा है। तो निश्चयसे इस जीवने पुत्रविकल्पमें बुद्धिमें मोह किया व्यवहारसे इस जीवने पुत्र पदार्थमें मोह किया, पर पुत्र शब्दसे मोह होता नहीं, वह तो शब्द है, वाचक है, तो तीनों बातोंका कहीं निराकरण नहीं किया जा सकता है। तो यों जब जब संज्ञायें तीन हैं—बुद्धि, शब्द और अर्थ जब नाम हैं तीन प्रकारके शब्द हैं तो इनका वाचक भी ये तीन हैं—बुद्धि शब्द और अर्थ। तब यहाँ इस कारिका द्वारा आचार्य महाराज हेतुके व्यभिचारकी आशङ्का को दूर कर देते हैं। बुद्धि, शब्द, अर्थ ये तीनों ही संज्ञायें अपनेसे व्यतिरिक्त अर्थात् इन संज्ञाओंसे व्यतिरिक्त कोई वस्तु है उसका सम्बन्ध दिखा देता है। और, उन तीनों का जो परिज्ञान होता है उसमें तीनोंका ही प्रतिभास है। वे तीनों उस ज्ञानके विषयभूत होते हैं। सामान्यसे जीव शब्द तो यहाँ धर्मी है और जीव शब्दसे अतिरिक्त जो पदार्थ है, जिसमें उत्पादव्यय ध्रौव्य है, चेतन है, ऐसा जीव वह बाह्य अर्थ है। सो सबाह्य अर्थ होना यहाँ यह साध्य है। तो इस साधनके द्वारा जो साध्य सिद्ध किया जा रहा है उसमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं है। अतएव यह हेतु निर्दोष और अव्यभिचारी है। तब संज्ञा होनेसे यह संज्ञा संज्ञातिरिक्त बाह्य अर्थका बोध करानेवाली है। वास्तवमें संज्ञा बाह्य अर्थसे युक्त है, उससे सम्बन्धित है, बाह्य अर्थका वाचक है, तब जीव भी एक शब्द है। तो जीव संज्ञा जीव नामक पदार्थका बोध कराने वाली है।

केवल विज्ञानमात्र तत्त्व होनेसे संज्ञात्वात् हेतुकी व्यभिचारिताका विज्ञानवादी द्वारा कथन—अब यहाँ विज्ञानवादी कहता है कि यह संज्ञात्वात् हेतु विज्ञानवादियोंके प्रति तो असिद्ध ही है, क्योंकि विज्ञानको छोड़कर अन्य कोई संज्ञा

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही नहीं है सब कुछ एक विज्ञानमात्र है। और फिर उस अनुमान प्रयोगमें जो साधन दिया है कि जीव शब्द सबाह्यार्थ है संज्ञा होनेसे, और उसके लिए दृष्टान्त दिया गया है जैसे हेतु शब्द। तो यह दृष्टान्त साधनविकल है। दृष्टान्तमें साधन नहीं पाया जा रहा है, क्योंकि हेतु शब्द भी विज्ञानसे अतिरिक्त अन्य कुछ चीज नहीं है। विज्ञानकी ही लीलामें हेतुका आभास हुआ है। तो वहाँ भी हेतुके आभासका वेदन होनेसे उस परिज्ञानसे अतिरिक्त अन्य कोई हेतु शब्द नहीं हैं। अतः दृष्टान्त साधनविकल है तथा यह हेतु व्यभिचारी हेतु है, क्योंकि संज्ञाका आभास करने वाला जो ज्ञान है जीव शब्द सबाह्य अर्थ है शब्दकार ज्ञान होनेसे, यही तो उस अनुमानका अर्थ है। तो जो शब्दाकार ज्ञान है, संज्ञाका आभास करने वाला ज्ञान है उसे यदि हेतु यहाँ मान लिया जाय तो शब्दाभास याने शब्दाकार रूप जो स्वप्न ज्ञान होता है वहाँ कहाँ कोई अर्थ है ? सो उस स्वप्नज्ञानके द्वारा यह हेतु व्यभिचारी हो जायगा। कभी स्वप्न आता है तो उस स्वप्नमें यह सोने वाला व्यक्ति शब्द सुनता है और खुद शब्द बोलता भी है, बोलता नहीं, किंतु इसके ज्ञानमें ऐसा ही आता है कि कोई बोल रहा है, मैं सुन रहा हूं, मैं बोल रहा हूं। तो स्वप्नज्ञानमें जो यों शब्दाकार बोध होता है तो देखिये ! शब्द तो मिल गया पर वहां पदार्थ कुछ भी नहीं है, जिसको देखकर डरकर बोले, ऐसी वहाँ कुछ भी चीज नहीं है। तब संज्ञात्वात् यह हेतु व्यभिचारी हो गया। तो यों संज्ञात्वात् हेतु सदोष होनेके कारण वह बाह्य अर्थको सिद्ध करनेमें असमर्थ है, किन्तु विज्ञानका निवारण किया ही नहीं जा सकता। अतः विज्ञान ही मात्र एक तत्त्व है। विज्ञानको छोड़कर न संज्ञा है, न दृष्टान्त है, न हेतु है, न अन्य कुछ है। जो कुछ प्रतिभासमें आता है वह प्रतिभासमात्र है और प्रतिभास है ज्ञानका स्वरूप। यों विज्ञानके अतिरिक्त जगतमें अन्य कोई पदार्थ नहीं है, फिर कैसे जीवनामक पदार्थकी सिद्धि करोगे ? इस प्रकार कोई विज्ञानवादी योगाचार यहाँ शंका कर रहा है। उस शंकाके प्रति समाधान करनेके लिए अब आचार्यदेव कहते हैं :

वक्तृश्रोतृप्रमातॄणां बोधवाक्यप्रमाः पृथक् ।
भ्रान्तावेव प्रमाभ्रान्तौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥८६॥

वक्ता, श्रोता व प्रमाताओंके वाक्य, बोध और प्रमाणोंके पृथक्त्व व विभिन्नताकी सिद्धि—वक्ता श्रोता और प्रमाताओंका बोध वाक्य और प्रमाण ये पृथक् पृथक् होते हैं। संज्ञात्वात् इस हेतुको यदि भ्रान्त माना जाय तो इस हठमें प्रमाण भी भ्रान्त हो जायगा। जब ज्ञान ही भ्रान्त हो गया तो बाह्य पदार्थ भी भ्रान्त और अभ्रान्त हो जायगा। यदि वक्ताको अभिधेयका बोध न हो जो कहा जाना हैं ऐसे वाक्यका यदि बोध वक्ताको नहीं है तो वाक्य फिर कैसे प्रवर्तित हो सकेगा क्योंकि वाक्य तो अभिधेयके बोधके कारणसे ही होता है। और, वाक्यके अभावमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

श्रोताको अभिधेयका ज्ञान नहीं हो सकता है क्योंकि अभिधेयका जो ज्ञान होता है वह वाक्यके कारणसे होता है और प्रमाताका अर्थात् ज्ञानका ज्ञान न होवे तो शब्द और अर्थ ये इन दोनों प्रमेयोंकी व्यवस्था न रह सकेगी, तब इष्ट तत्त्व नहीं बन सकता है। इस कारणसे मानना होगा कि वक्ता श्रोता और ज्ञाता इन तीनके बोध वाक्य और प्रमाण ये पृथकभूत ही हैं। यहाँ विज्ञानवादीकी यह शंका थी कि विज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। सो देख लीजिए ! यदि बोध वाक्य प्रमा न माना जाय वक्ता श्रोता प्रमाता न माना जाय तो कुछ भी सि नहीं होद्धि सकती है। वक्तामें तो वाक्य लगाइये, श्रोतामें बोध लगाइये और जो प्रमाता हैं उसमें प्रमाण लगाइये। सो देखो वक्ताका कोई वाक्य श्रोताके बोधसे और प्रमाताके प्रमाणसे जुदा ही रहा था, इसी प्रकार श्रोताका बोध वक्ताके वाक्य और प्रमाताके प्रमाणसे भिन्न रहा इसी प्रकार प्रमाताका प्रमाण वक्ताके वाक्य और श्रोताके बोधसे भिन्न ही रहा। और ये सब तीनों सम्बद्ध हैं। किसीका अभाव माननेपर फिर यह प्रवृत्ति कुछ भी न होगी। उस ही बातको अब बताया गया है कि वक्ता यदि इतना भी न जानता हो कि जो मुझे कहा है वह पदार्थ क्या है जैसे बालको कहा है उसका ही बोध न हो तो वाक्य कैसे प्रवर्तित होगा ? और, जब वाक्य ही नहीं है तो श्रोता अभिधे का ज्ञान कैसे कर लेगा ? जब कोई वक्ता कुछ कहता है तो श्रोता सुनकर ज्ञान करता है। जब वाक्य ही न रहा तो श्रोताको अभिधेयका ज्ञान नहीं हो सकता और जब ये दोनों न रहे वहाँ प्रमाणकी क्या आवश्यकता और प्रमाताकी प्रमिति न रही याने जानने की क्रिया न रही तो न कोई शब्दकी व्यवस्था कर सकेगा न पदार्थकी। विज्ञानवादी उस विज्ञानकी कैसे व्यवस्था करेगा ? किसीका भी इष्ट तत्त्व फिर सिद्ध नहीं हो सकता। इस कारण यह मानना आवश्यक है कि वक्ता श्रोता और प्रमाताओंके वाक्य बोध और प्रमाण ये पृथकभूत हैं और जब इन्हें पृथकभूत मान लिया जायगा तो हेतु में असिद्धता आदिक दोष न होंगे और दृष्टान्तमें भी साध्य साधन आदिककी विकलता न होगी। यहां मूल अनुमान प्रयोग है। जीव शब्द स्वसे व्यतिरिक्त बाह्य अर्थ के साथ है अर्थात् जीव शब्द जीव पदार्थका वाचक है संज्ञा होनेसे हेतु शब्दकी तरह। तो इस अनुमान प्रयोगमें न हेतुदोष है न दृष्टान्तदोष है।

विज्ञानवादी द्वारा वक्ता, श्रोता, व प्रमाताका निषेधन—अब शंकाकार कहता है कि बाह्य अर्थ तो कुछ है ही नहीं। तब केवल विज्ञानमात्र ही तत्त्व है तो वक्ता श्रोता और प्रमाता ये तीनों विज्ञानसे जुदे आ कहांसे जायेंगे ? वक्ता श्रोता और प्रमाताका जो आभास हो रहा है ऐसे आभास वाली जो बुद्धि है वह ज्ञान ही तो है। उस ज्ञान विलाससे ही वक्ता श्रोता प्रमाताका व्यवहार होता है। यह वक्ता है, यह श्रोता है यह प्रमाता है। यह व्यवहार तब बना जब ज्ञान हुआ उससे यह आभास बना। इसी प्रकार वाक्य भी ज्ञानसे अलग कुछ नहीं है। कुछ जाना तभी तो लोग

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसका सत्त्व कहते हैं। तो जाननेसे अलग तो न रहा कुछ। इसी प्रकार प्रमा तो साक्षात् बोधात्मक ही है उसमें तो कोई युक्ति बतानेकी आवश्यकता ही नहीं है। प्रमा प्रमाण ये स्वयं ज्ञान स्वरूप हैं तो जब विज्ञानको छोड़कर अन्य कोई बाह्य अर्थ न रहे तब इसमें असिद्धता आदिकके दोष होना और हेतुका जो दृष्टान्त दिया है उसमें भी दोष आता है। अतः यह अनुमान प्रयोग ठीक नहीं है कि जीव शब्द जीव पदार्थका वाचक है। सभी बात केवल एक विज्ञानमात्रका ही समर्थन करती हैं।

विज्ञानातिरिक्त सबको, वक्ता, श्रोता प्रमाताको भ्रम माननेपर विज्ञानतत्त्वकी असिद्धि—अब उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि शङ्काकारने वक्ता, श्रोता, प्रमाताके अभावका वचन पूर्वापर विचार करके नहीं कहा, यों ही जल्दबाजीमें कह दिया है। देखिये ! यदि विज्ञानमात्रको छोड़कर अन्य सबको भ्रम माना जाय, असत्य माना जाय, जैसे कि रूपादिकका ग्रहण करने वाला कोई वक्ता है या श्रोता है उसे भ्रम माना जाय और उनसे व्यतिरिक्त जो विज्ञानकी संतान है उसे भ्रम माना जाय और ज्ञानमात्रका आलम्बन लेने वाले प्रमाणको भी भ्रम माना जाय तब तो रूपादिक किसी भी प्रकारकी सिद्धि नहीं हो सकती। फिर अन्तर्ज्ञेय अर्थात् ज्ञानाद्वैतके माननेमें भी विरोध आता है। विज्ञानवादी शङ्काकार रूपादिकका ग्रहण करने वाले वक्ताको नहीं मानते, श्रोताको भी नहीं मानते, जगतमें जो कुछ यह नजर आ रहा है इस किसीको भी नहीं मानते। और, इतना ही नहीं, जो विज्ञानकी संतान चल रही है, किसी भी पुरुषमें जो वर्षोंसे विज्ञानकी परम्परा चल रही है, जिससे कि पहिले विज्ञानके अनुभवमें दूसरा विज्ञान स्मरण कर लेते हैं ऐसा जो ज्ञानक्षणोंका संतान चल रहा है उस संतानमें भी भ्रम माना है, और की तो बात क्या ? ज्ञानमात्रका आलम्बन लेकर कुछ भी निर्णय करने वाले प्रमाणको भी भ्रम माना है। तो जब विज्ञानवादीकी दृष्टिमें ये सभी भ्रम बन गए तब रूपादिक या किसी भी पदार्थकी किसी भी प्रकार सिद्धि न होगी। जब कुछ ज्ञेय ही न रहा तो ज्ञानका स्वरूप ही क्या बनेगा ? तब ज्ञानाद्वैत माननेका भी विरोध हो जाता है। जब रूपादिक जो कि अभिधेय हैं, जिसे वक्ता बताना चाहता है श्रोता समझना चाहता है, जब इस अभिधेयको ग्रहण करनेवाले वक्ता और श्रोता ही भ्रमरूप बन गए अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्शको जानने समझने सुनने वाले ये पुरुष भ्रम बन गए तब इसमें व्यतिरिक्त जो विज्ञानका संतान है वह भी सिद्ध नहीं होता और ज्ञानमात्रका आलम्बन करने वाला प्रमाण भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि स्वांशमात्रका आलम्बन लेने वाले ज्ञान अपने स्वरूपकी समझ वाले नहीं हैं, इन सबका परस्परमें कोई संचार नहीं है, जिससे कि फिर यह पता पड़ सके कि यह तो शब्द है यह अभिधेय है और यह ज्ञान है।

प्रमाणको भ्रान्त माननेपर आगमवचन, अभिमततत्त्व आदि सबकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भ्रान्तताका प्रसङ्ग—यदि शङ्काकार यह कहे कि ज्ञानमात्रका आलम्बन लेने वाला ज्ञान भी, प्रमाण भी भ्रम ही है तो लो जब तुमने प्रमाणको ही भ्रम मान लिया तो प्रमाणकी सिद्धि तो न रही। फिर कुछ तत्त्व ही कैसे सिद्ध होगा ? और जब प्रमाण ही भ्रम हो गया तो यह उनका आगम वचय भी खण्डित हो जाता है कि अभ्रान्तज्ञान प्रमाण होता है। विज्ञानवादी क्षणिकवादी यह दार्शनिक निर्विकल्पज्ञानको अभ्रान्त और प्रत्यक्ष मानता है। तो प्रमाण यहाँ भ्रम हो गया तो प्रमाणका यह स्वरूप कहना भी खण्डित हो जाता है। और, जब प्रमाण भी भ्रम बन गया तो अन्तर्ज्ञेय याने विज्ञानमात्र ही तत्त्व है यह सिद्धान्त कैसे नहीं विरुद्ध हो जायगा? किस प्रमाणसे सिद्ध करोगे कि ज्ञानाद्वैत ही प्रमाण है ? जिस प्रमाणसे सिद्ध करोगे वह प्रमाण भ्रम है और भ्रमसे कहीं तथ्यकी सिद्धि होती है ? भ्रमसे तो भ्रान्त ज्ञान ही बनेगा। तो प्रमाणके बिना यदि विज्ञानवादको मान लिया जाय तो प्रमाणके बिना सभी दर्शनिकोंका अपना अपना मंतव्य भी इस शङ्काकारको मान लेना चाहिए। जो कोई जो कुछ कहे वही तथ्य बन जायगा। क्योंकि उसके लिए अब प्रमाणकी आवश्यकता तो रहीं नहीं। और, भी आगे देखिये ! जब प्रमाणमें भ्रान्ति आ गयी, प्रमाण भी भ्रमरूप बन गया तो दोनों बाह्य अर्थोंके अर्थात् अपनेको ग्रहण करने वाले ज्ञानकी अपेक्षा से यह विज्ञान बाह्य पदार्थ हो गया और जो प्रकट बाह्य हैं वे भी बाह्य हो गए तो अब बाह्य अर्थका जो कि प्रमाण और अप्रमाणरूप है उन दोनों प्रमेयोंका अर्थात् अन्तर्ज्ञेय और बहिर्ज्ञेय जोकि विज्ञानवादीको अन्तर्ज्ञेय तो इष्ट है और बहिर्ज्ञेय अनिष्ट है इसका विवेचन करना यह भी सब भ्रमरूप हो जायगा, फिर वे विज्ञानवादी उस विज्ञानमात्र तत्त्वको कैसे सिद्ध कर सकेंगे ? अन्तर्ज्ञेय और बहिर्ज्ञेय रूप पदार्थ तो अपने ज्ञानको ग्रहण करनेकी अपेक्षासे बाह्य अर्थ ही है, याने जो ज्ञान ग्रहण करेगा वह ज्ञान अलग है। उसके मुकाबले तो ये दोनों बाह्य अर्थ हो गए, क्योंकि अब ये ज्ञेय बन गए। ज्ञाता तो ज्ञान है और ज्ञेय है विज्ञानवाद और रूपादिक पदार्थ तो यों वे दोनों बाह्य अर्थ हैं और बाह्य अर्थको भ्रान्त मानना ही होगा। तो विज्ञानवाद भी भ्रान्त हो गया, क्योंकि विज्ञानवादको ग्रहण करने वाला प्रमाण ही भ्रमरूप मान लिया। अब बतलाओ कि वहाँ हेय उपादेयका विवेक कैसे हो ? जहाँ अन्तर्ज्ञेयका एकान्त मान लिया वहाँ न व्यवस्था रहेगी न हेय उपादेयका विवेक रह सकेगा। तब अन्तर्ज्ञेयका एकान्त मान लेना कैसे विरुद्ध न होगा ?

प्रमाणको अभ्रान्त माननेपर प्रमेयोंकी अभ्रान्तताकी सिद्धि—यदि शङ्काकर यह कहे कि प्रमाणको तो हम अभ्रान्त मानते हैं अर्थात् प्रमाण भ्रमरूपसे रहित है, प्रमाणका निर्णय सही है और प्रमाण स्वयं सही है तब तो बाह्य पदार्थ भी मान लेना चाहिए। यदि प्रमाणको अभ्रान्त मान लिया तो बाह्य अर्थ भी मान लिया समझिये, क्योंकि बाह्य अर्थमें प्रमाण और प्रमाणाभासकी व्यवस्था नहीं बन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकती। जब विज्ञानवादीने प्रमाण मान लिया तो प्रमाण तो वही होगा जो सत्य हो और जो यथार्थ न हो प्रमाण उसे प्रमाणाभास कहना होगा। तो प्रमाण और प्रमाणाभास इनका स्वरूप कैसे बनेगा ? इनका स्वरूप इस ही प्रकार बनता है कि बाह्य पदार्थ जैसा है वैसा ज्ञान हो तो वह प्रमाण है। बाह्य पदार्थ जैसा है उसकेविपरीत ज्ञान हो तो वह प्रमाणाभास है। तो लो प्रमाण और प्रमाणाभास मान लेने पर बाह्य अर्थको मानना ही पड़ा। इसी बातको अब समन्यभद्राचार्य कहते हैं।

बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं बाह्यार्थे ति, नासति।

सत्यानृतव्यवस्थैवं युज्यतेर्थास्यनाप्तिषु ॥८७॥

बाह्य पदार्थका अभाव माननेपर प्रमाण व प्रमाणाभासकी व्यवस्थाकी असंभवता—बाह्य पदार्थके होनेपर बुद्धि और शब्दका प्रमाणपना बनता है और बाह्य अर्थ न हो तो बुद्धि और शब्दकी प्रमाणता नहीं बनती। इस ही प्रकार अर्थात् जब बाह्य अर्थके होनेपर ही प्रमाणपना बनता है, बाह्य अर्थके न होनेपर प्रमाणपना नहीं बनता तो यह सत्य है यह मिथ्या है यह व्यवस्थाका कारण है और आप्त अनाप्त के निर्णयमें भी यह पद्धति व्यवस्थाका कारण है। इसका अर्थ स्पष्ट है—जो जान रहा है बाह्य अर्थ वहाँ नहीं है तो वह प्रमाण नहीं करला सकता। जैसे किसीने चाँदी जान लिया और चाँदी है नहीं, सीप है या कुछ भी नहीं है। यों ही चाँदी समझली, कहीं थोड़ा प्रकाश सा ही दिखा, चाँदीका ज्ञान कर लिया तो जो ज्ञान है उसके अनुकूल पदार्थ नहीं है, इस ही कारण तो कहेंगे कि वह यह प्रमाणाभास है। और, जैसा जाना वहाँ बाह्यमें पदार्थ हुआ तो वह प्रमाण है। सत्य और झूठकी व्यवस्था इस ही प्रकार होती है। इसी पद्धतिसे आप्त अनाप्तकी भी व्यवस्था होती है। तो इस प्रमाण प्रमाणाभासकी पद्धतिसे यह सिद्ध हुआ कि बाह्य पदार्थ भी है। केवल विज्ञान मात्र ही तत्त्व है सो बात नहीं। जगतमें पदार्थ अनन्त हैं, कुछ ज्ञान स्वरूप हैं कुछ ज्ञान रहित हैं इसमें एक एकान्त कर लेना यह आत्मकल्याणके लिए साधक नहीं हैं।

बाह्य अर्थ, शब्द व विज्ञानके स्वीकार करनेपर ही तीर्थ प्रवृत्तिकी संभवता—बुद्धि अपने आपको समझानेके लिए होती हैं अर्थात् बुद्धिके द्वारा अपने आपकी समझ बनती है, क्योंकि ज्ञानका प्रयोजन ही स्वसम्वेदन है और शब्द दूसरोंको समझानेके लिए होता है, यह घट है, यह पट है, यह जीव है कुछ भी कहनेका प्रयोजन शब्दोंमें रहता है। तो जब बुद्धि अपने ज्ञानके लिए है और शब्द दूसरेके प्रतिपादनके लिए है तो अपने और दूसरोंकी जानकारी बने इसके लिए साधन बुद्धि शब्दात्मक ही हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकता है। याने समझने वालेको ज्ञान हुआ और समझाया जा सकने योग्य शब्द हुआ तब निजको और दूसरेकी जानकारी बनती है। केवल स्वसम्वेदनसे अर्थात् अपनी जानकारी मात्रसे दूसरेको प्रतिपादन नहीं हो सकता, क्योंकि किसीकी जानकारी उसके लिए ही तो स्पष्ट है, दूसरेके लिए तो प्रत्यक्ष नहीं है अतएव तीर्थ प्रवृत्ति अथवा समझने समझानेकी परम्परा बुद्धिशब्दात्मक ढंगसे ही होती है। तो साधन है बुद्धि-शब्दात्मक, उस बुद्धिशब्दात्मक साधनकी प्रमाणता कैसे आती है अर्थात् यह समझावन और यह परिचय प्रमाणभूत है सत्य है, यह बात समझमें कैसे आयगी ? तो बाह्य पदार्थके होनेपर ही उस बुद्धिकी प्रमाणता जाहिर होती है। अर्थात् जो समझाया है और जिसे शब्दों द्वारा बताया है वह पदार्थ यदि है तब समझिये कि यह समझ भी प्रमाण है और यह शब्द भी प्रमाण है और यह प्रमाणता भी कैसे जाहिर हो ? वह होती है पदार्थ की प्रतिपत्तिसे। जैसे किसीने किसी घटनाका वर्णन किया तो अब वहां घटना मिल जाय या जिन चीजोंका वर्णन किया वे चीजें वहाँ दिख जायें तब तो यह निश्चय होता है कि ये सब प्रमाणभूत हैं और बाह्य पदार्थ न हों तो वह ज्ञान प्रमाणाभास है, और उसकी पुष्टि यों होती है कि जैसा वह बता रहा अज्ञानी वैसा पदार्थ नहीं पाया जा रहा है। तो इस तरह सत्य और झूठकी व्यवस्था बुद्धि और शब्दकी ही बनती है।

विज्ञानमात्र माननेपर तीर्थप्रवृत्तिकी अनुपपत्ति—मूल प्रकरण यहाँ यह था कि कोई नास्तिक यह कह उठा था कि जीव ही नहीं है कुछ तो उसकी सिद्धिके लिए अनुमान प्रयोग बनाया कि जीव अवश्य है अन्यथा जीव शब्द ही नहीं बनता। यह जीव शब्द अपने वाच्य अर्थके साथ है क्योंकि वह संज्ञा है। इसपर मीमांसक यह कहने लगे कि बुद्धि, शब्द और अर्थ ये तीनों एक पर्यायवाची शब्द हैं अर्थात् सभी पदार्थके नाम है, शब्द कोई अलग चीज नहीं है, बुद्धि भी कोई अलग चीज नहीं है। उनके प्रति समाधान दिया गया कि सर्वत्र बुद्धि शब्द और पदार्थ ये तीनों पृथक पृथक समझे जाते हैं। जैसे घट शब्द कहा तो घ और ट ये दो वर्ण तो घट शब्द कहलाये जो कि वाचक है और वे घट पदार्थ जिनमें जल धारण किया जाता है वह घट अर्थ है और समझने वालेने जो कुछ समझा, उसकी जो समझ है वह है घटबुद्धि। तो तीन ये संज्ञायें हैं तो इन तीनों चीजोंका विभिन्नरूपसे ज्ञान होता है। इसपर विज्ञान-वादी कहने लगे कि न संज्ञा न बुद्धि, न शब्द न अर्थ, न वक्ता, न श्रोता न प्रमाण कुछ भी नहीं है। केवल एक विज्ञानमात्र ही है। तो उनके समाधानके लिए बताया कि केवल विज्ञानमात्र ही तत्त्व मानोगे वक्ता, श्रोता, प्रमाण, ज्ञान, वाच्य ये कुछ भी न मानोगे तो कुछ भी सिद्धान्त सिद्ध नहीं किया जा सकता है। उससे सम्बन्धित यह बात कही जा रही है कि विज्ञानवादको भी यदि सिद्ध करना चाहोगे तो कोई हेतु देगा, कुछ शब्द न कहेगा, कोई समझने वाला है, कोई सुनने वाला है। कोई

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्णय देने वाला है। ये सब बातें तो हैं तब तो विज्ञानमात्र जो तत्त्व है उसे विज्ञानवादी कह कैसे सकेगा ? तो केवल विज्ञान ही कहाँ रहा ? वक्ता है, श्रोता है, प्रमाता है और बुद्धि शब्द प्रमाण भी है। तो यहाँ बुद्धि शब्द प्रमाणपनेकी सिद्धि की जा रही है कि ये सब चीजें बाह्य पदार्थके होनेपर ही बनती हैं। बाह्य पदार्थ न हो तो इसकी सिद्धि नहीं होती। अपने पक्षको सिद्ध करना हो और दूसरे पक्षका दूषण देना यही बात तो करनी पड़ती है अपने सिद्धान्तकी सिद्धि करनेके लिए। तो यह बात बुद्धिमें भी पायी जाती है। कोई पुरुष सत्य मंतव्यको सही मानना चाहता है तो तब ही तो जानता है कि हाँ इस मंतव्यमें जो गुण है और यह समीचीन है। इसमें कोई दोष नहीं है और इसके विरुद्ध अन्य मतोंमें दोष है। तो यह जानकारी ही तो बतायगी। इसी प्रकार दूसरोंको समझाते हैं कि भाई यह मंतव्य सही है, इसकी सिद्धि है और इसके विरुद्ध अन्य मतोंमें दूषण आता है तो यह भी शब्दों द्वारा ही जाहिर होगा। तो स्वपक्षको सिद्ध करें, परपक्षका दूषण दें ऐसी बुद्धि और शब्द ही इस तरहके मालूम होते हैं। और, वह सब सत्य है यह बात यों जानी जाती है कि जैसी जानकारी हुई, जैसा कुछ शब्दोंने बताया वैसा पदार्थ वहाँ मिल जाय। इस प्रकार जबकि झूठ और सचकी व्यवस्था बुद्धि शब्दात्मक पद्धतिसे होती है और बुद्धि शब्दात्मकका प्रयोग तभी बनता है जब बाह्य अर्थ हो, तो उससे यह सिद्ध हो गया कि बाह्य पदार्थ परमार्थतः सत् है।

साधन दूषण प्रयोगसे भी बाह्यार्थके सद्भावकी सिद्धि—ज्ञानाद्वैतवादी केवल ज्ञानमात्रको ही तत्त्व मान रहा है। उसके प्रति कहा जा रहा कि ये सब कुछ बाह्य तत्त्व जो कुछ नजर आ रहे हैं—घट पट चौकी पुस्तक आदिक ये सब भी परमार्थ हैं। यद्यपि इनकी जो वर्तमान अवस्था है वह सदा नहीं रहती इसलिए यह अवस्था परमार्थ नहीं है किन्तु पर्याय है लेकिन जिन मूल द्रव्योंके परमाणुओंकी पर्याय है, वे सब परमाणु परमार्थभूत हैं। तो यहाँ अनुमान प्रयोगसे भी समझ लेना चाहिये कि बाह्य पदार्थ वास्तविक सत है, क्योंकि साधन दूषणका प्रयोग होनेसे। यदि ये बाह्य पदार्थ न होते तो किसकी तो सिद्धि की जाय और किसमें दूषण दिया जाय ? तो यहाँ यह साधन दूषण प्रयोगार्थ यह हेतु दिया गया है। यह हेतु अविनाभावी है, उसमें अविनाभाव असिद्ध नहीं है, क्योंकि बाह्य पदार्थके होनेपर ही साधन दूषणका प्रयोग होता है। यहाँ एक बात और विशेष जानना चाहिए कि साधन तो ज्ञान है याने सबकी सिद्धि करने वाला यह ज्ञान है। जिन युक्ति हेतुओंसे बुद्धिको निर्मल बनाया है यह बुद्धि पदार्थकी सिद्धि करती है, किन्तु इस बुद्धिके द्वारा दोनों प्रकारके पदार्थ सिद्ध किए जा रहे हैं। एक तो निज आत्मतत्त्व दूसरे बाह्य समस्त पदार्थ। तो जब बुद्धि सब पदार्थोंका निर्णय करने चलती है उस समय उस बुद्धिके मुकाबलेमें बाह्य पदार्थ ये दोनों हो गए। बुद्धि तो स्व हुआ और आत्मा, ज्ञानस्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ये चेतन पदार्थ और समस्त ये अचेतन पदार्थ याने चेतन और अचेतन तथा स्व और पर सभीका निर्णय बुद्धि करती है, इस कारण बाह्य पदार्थ यहाँ निज भी और पर भी सब मानने चाहिएं। जब कि विज्ञानवादी केवल एक विज्ञानको ही तत्त्व मानता है। न जीव माना जा रहा न आत्मा न परमाणु आदिक बाह्य पदार्थ। वे तो केवल ज्ञानक्षणको ही स्वीकार करते हैं। तो उसको समझाते हैं कि आत्मा भी है और अन्य पदार्थ भी है। तो ये समस्त बाह्य पदार्थ, जो विज्ञानवादीकी दृष्टिमें हैं वे बाह्य पदार्थ हैं तो परमार्थतः साधन दूषण प्रयोग बनता है और न हो तो साधन दूषण प्रयोग नहीं बनता। हेतु दो प्रकारका बताया गया है। तो साध्यके होनेपर ही तो हेतुकी दो प्रकारता है। जैसे अनुमान प्रयोग किया कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, तो यहां यह धूम हेतु सही है, यह कैसे जाना जायगा ? इसकी सचाईके जाननेकी दो पद्धतियाँ हैं। धूमके होनेपर अग्नि पाई जाती है एक यह व्याप्ति मिलती है तब धूम हेतु समीचीन सिद्ध होता है। दूसरे—अग्निके न होनेपर धूम नहीं पाया जाता, जब यह व्याप्ति विदित होती है तब धूमके हेतुत्वकी सचाई सिद्ध होती है। तो साध्यके बलपर ही तो हेतुकी समीचीनता सिद्ध होती है। तो साध्य है यहाँ बाह्य पदार्थ। बाह्यपदार्थके होनेपर ही साधन और दूषणका प्रयोग बन सकता है। तो साधन दूषणका प्रयोग हो रहा है तो समझना चाहिए कि वहाँ बाह्य पदार्थ है, यह व्याप्ति बनी। बाह्य पदार्थ न हो तो साधन और दूषणका प्रयोग नहीं बन सकता। इस तरह अन्यथानुपपत्ति और तथोपपत्ति इन दो लक्षणोंसे इसकी सचाई जानी जाती है।

बाह्य अर्थके अभावमें साधनदूषणप्रयोगकी अशक्यता—यहाँ यह समझना चाहिए कि बाह्यपदार्थके अभावमें साधन और दूषणका प्रयोग नहीं बनता। चीज ही कुछ नहीं है केवल एक विज्ञान ही विज्ञान माना जाय तो अब कहाँ और क्या साधा जाय और किससे क्या दूषित किया जाय ? अन्यथा तो यदि बाह्य पदार्थके अभावमें भी साधन और दूषणका प्रयोग बनने लगे तो स्वप्नमें देखी हुई बातमें क्या अन्तर रहा ? जैसे स्वप्नमें बाह्य पदार्थ कुछ है नहीं, केवल ख्याल ही बन रहा है तो वहाँ किसके द्वारा क्या काम साधा जाय ? किसके द्वारा क्या बिगाड़ा जाय ? वहाँ कुछ अर्थक्रिया तो नहीं होती। इसी तरह इस जागृत अवस्थामें भी बाह्य पदार्थ नहीं माने जा रहे तो अब क्या साधा जाय और क्या दूषित किया जाय ? अथवा अन्य संतान भी कैसे सिद्ध किया जाय या दूषित किया जाय ? या निजका संतान अर्थात् खुदके शरीरमें होने वाले जो प्रतिसमय ज्ञानक्षण होते रहते हैं उनका संतान भी कैसे सिद्ध किया जाय या दूषित किया जाय ? याने अपने संतानमें क्षणिकपना और वेद्य आदिक आकारोंसे रहितपना भी कैसे सिद्ध किया जाय ? यहाँ शङ्काकार है ज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध, जो केवल ज्ञानतत्त्व ही मानता है, लेकिन क्षणिक-क्षणिक ज्ञान अनन्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान प्रति समयमें भिन्न–भिन्न नया नया होने वाला ज्ञान ऐसा ही ज्ञान है केवल और परमाणु या अन्य पदार्थ नहीं है। ज्ञानाद्वैतवादी एक दूसरा दार्शनिक भी है जो ब्रह्मा-द्वैतवादीके नामसे प्रसिद्ध है। वे चेतनात्मक ब्रह्म मानते हैं लेकिन उनका यह ज्ञान चैतन्य प्रतिभास एक है, जितने शरीर हैं उन शरीरोंमें सबके एक ही आत्मा है। तो उनके प्रति यह समाधान अभी नहीं चल रहा है, क्योंकि शङ्काकार यहाँ क्षणिक-विज्ञानवादी है। तो उसकी ही मान्यतामें दूषण दिया जा रहा कि यदि बाह्य पदार्थ न माने जायेंगे तो संतान भी सिद्ध न होगा। और अपनी संतानमें जो क्षणिकता है और वेद्याकारादि शून्यता है वह भी कैसे सिद्ध होगी ? बाह्य पदार्थ वास्तविक हैं और ज्ञानमें जो कुछ ग्रहणमें आ रहा है घट-पट आदिक. तो ग्राह्यपना उसका लक्षण है। जो ज्ञानमें ज्ञेय हो रहा है ऐसे ही तो ये बाह्यपदार्थ हैं, उनका यदि अभाव माना जाय तो अभाव होनेपर भी साधन और दूषणका प्रयोग माना जाय तो स्वप्नावस्थामें होने वाली और जागृत अवस्थामें होने वाली बातोंमें क्या अन्तर रहेगा ? वहाँपर भी साधन दूषण प्रयोग मान लो। यदि किसीने स्वप्नमें कुछ किसी बाहरी क्षेत्रको जाना या पहाड़पर उड़ना या अन्य कुछ बातें देखी गई हैं तो वहाँ वे बातें मिल भी जानी चाहियें। किन्तु जैसे स्वप्नकी बात क्यों झूठ है कि वहां बाह्य पदार्थ कुछ न माने जायें तो सारा ज्ञान झूठ हो जायगा। इस कारणसे यह समझना चाहिए कि केवल ज्ञानमात्र ही तत्त्व नहीं है, किन्तु बाह्य पदार्थ भी वास्तविक है।

विज्ञानातिरिक्त कुछ न माननेपर स्वेष्टतत्त्वकी सिद्धिकी अशक्यता– यदि बाह्य पदार्थ न माने जायें तो वे विज्ञानवादी सहोपलम्भ नियमसे अतिरिक्त भिन्न अपने ज्ञानाद्वैतको सिद्ध करनेके लिए जो जो हेतु दिया करते हैं उन हेतुओंसे, उन अनुमानोंसे क्या सिद्ध किया जायगा ? किसके द्वारा सिद्ध किया जायगा ? उनका जब कुछ अर्थ ही नहीं है तब कुछ भी सिद्धि नहीं हो सकती अथवा दूसरेके लिए वचनात्मक परिश्रमसे भी क्या सिद्ध किया जायगा, क्योंकि कुछ बाह्य अर्थ माना ही नहीं है। अथवा वह स्वसम्वेदन ज्ञान जो कि इन विज्ञानवादियोंको इष्ट है वह भी स्वतः साध लिया जायगा या प्रत्यक्षसे भी क्या सिद्ध कर लिया जायगा ? अर्थात् कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि उस सब बातको सिद्ध करने वाला जो साधन है वह तो निर्विषय है, उसका कोई आधार ही नहीं है। जैसे कि स्वप्नमें देखी हुई बातें स्वप्न में सिद्ध की जाने वाली बातें निर्विषय हैं, उनकी कुछ सिद्धि ही नहीं है। किसीने स्वपन देखा कि हमने बहुत भरपेट भोजन किया। और भूखा ही वह व्यक्ति सो गया था। तो ऐसा स्वप्न देखनेसे कहीं उसका पेट तो नहीं भरता। क्यों नहीं भरता कि उस स्वप्नमें बाह्य पदार्थ कुछ नहीं है। अब यों ही जानना चाहिए कि यहाँ भी कोई बाह्य पदार्थ न हो तो कुछ साध्य नहीं किया जा सकता है। तो जिस प्रकार बाह्य पदार्थके न माननेपर कुछ भी साध्य नहीं किया जा सकता इसी तरह बाह्य पदार्थके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न माननेपर किसी भी दूषण द्वारा कुछ भी दूषित नहीं किया जा सकता। जो लोग संतानान्तर नहीं मानते, स्वसंतान ही मानते हैं उनके यहाँ भी अपने संतानकी क्षणिकता आदिक भी किसके द्वारा सिद्ध करोगे ? और संतानान्तरका किस तरहसे दूषण होगे ? अर्थात् बाह्य पदार्थ न माननेपर और दूषणका न कोई उपाय बनेगा न कोई साधन दूषणका कर्ता होगा। कोई बात ही होगी जो साधी जायगी और दूषितकी जायगी। तो यों बाह्य पदार्थ न माननेपर कोई कहीं भी व्यवस्थित नहीं रह सकता है।

सबको भ्रमरूप मानने वाले ज्ञानको भी भ्रमरूप या अभ्रमरूप कहने पर भ्रमैकान्तकी असिद्धि—कोई यदि ऐसा माने कि जैसे तिमिर रोग वालेको दो चन्द्र दिखते हैं तो जैसे दो चन्द्रोंका दिखना भ्रान्ति है उसी प्रकारसे सारा व्यवहार भी भ्रान्त है। जितने भी ज्ञान हैं, जितने भी ज्ञेय हैं, जो कुछ समझ बन रही है वह सारा ही भ्रान्त है, ऐसा भी कोई यदि माने तो यह बात तो सही है ना ! तो कोई समझनेके लिए यह तत्त्वज्ञान तो मानना ही पडेगा। इस तरह यह तत्त्वज्ञान तो उनके लिए शरण कहना ही होगा। जो पुरुष जो कुछ भी व्यवस्था बनाये—शून्यताकी व्यवस्था बनाये या सबको भ्रम बतानेकी व्यवस्था बनाये कुछ भी व्यवस्था बनाये, आखिर वह उनका तत्त्वज्ञान हो कहलायगा ? तो जिस बुद्धिसे जो कोई जो कुछ भी सिद्ध करे उसके लिए वह बुद्धि, वह तत्त्वज्ञान शरण है। तत्त्वज्ञानसे ही देखो इस शून्यवादीने सबको भ्रमकी व्यवस्था बनायी। जगतमें जो कुछ भी है वह सब भ्रम है, ऐसी भी व्यवस्था बनाने वाला कोई है ना ! वह है ज्ञान। तो ज्ञानको तो मना नहीं किया जा सकता है। और, यहाँ तक कि जो लोग यह कहते हैं कि जीव नहीं है, ज्ञान नहीं है तो ऐसा भी तो वह ज्ञान कर ही तो रहा है। ज्ञानको छोड़कर कोई बाहर जा नहीं सकता। तत्त्वज्ञान शरण है। युक्तियाँ बताये, ये सब उसके निर्णयके उपाय हैं। तो तत्त्वज्ञानसे कोई विमुख नहीं हो सकता है। सबको मानना पड़ेगा कि सबके लिए तत्त्वज्ञान शरण है। जिस ज्ञान द्वारा जिस बुद्धि द्वारा अपने मंतव्यकी सिद्धि की जा रही है, तो जब तत्त्वज्ञान सिद्ध हो गया तो यह मत भी खण्डित हो जाता है कि सर्व कुछ भ्रान्त है, लो तत्त्वज्ञान तो भ्रान्त न रहा। उसने तत्त्वज्ञान तो स्वीकार कर लिया। तो अब ये सब पदार्थोंके भ्रमका साधन न बने अतएव सर्व भ्रम है, इसमें भी तत्त्वज्ञान शरण है। अन्यथा अर्थात् यदि ज्ञानको भी भ्रान्त स्वीकार करने लगे तो बाह्य पदार्थोंकी तरह अपने इष्ट मंतव्यका भी अर्थात् सब भ्रम है इस मंतव्यका भी निराकरण बन बैठेगा। जैसे कि विज्ञानवादी शङ्काकार बाह्य अर्थका निराकरण कर रहे हैं कि बाह्य अर्थ कुछ भी नहीं है तो अब जब तत्त्व ज्ञानको भी भ्रान्त मान लिया तो जो उनका इष्ट मंतव्य है वह तो इष्ट रहा नहीं, क्योंकि तत्त्वज्ञान भी भ्रान्त माना जा रहा है। तब उस ज्ञानके द्वारा जो भी विज्ञानवादीको मिला है वह सर्व भ्रम है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसका भी निराकरण हो जायगा, अर्थात् भ्रम न रहेगा। भ्रान्त ज्ञानसे शङ्काकारके इष्टका भी निराकरण हो जाता है, केवल बाह्य अर्थका ही निराकरण नहीं। अतएव मानना होगा कि तत्त्वज्ञान सबके लिए शरण है, और वह तत्त्वज्ञान ज्ञानाद्वैत भावसे बाह्य है क्योंकि जो ग्राहक है आभास उसकी अपेक्षासे भी बाह्य है और जीवादिक भूत चतुष्टय आदिक भी बाह्य है। इससे स्वीकार कर लेना चाहिए कि जगतमें जितने भी पदार्थ हैं, जिन जिनकी पर्यायें हैं वे सब वास्तविक हैं, अनादि अनन्त हैं उनमें पर्यायें प्रतिक्षण होती रहती हैं।

बुद्धिशब्द प्रमाण आदि कुछ न माननेपर स्वपक्ष साधनकी व परपक्ष दूषणकी अशक्यता होनेसे तत्त्वकी असिद्धि — लिये! विज्ञानवादी अपना मंतव्य कैसे साध सकेंगे जब कि बुद्धि, शब्द और प्रमाणको भी ये मिथ्या मानते हैं। इसी प्रकार बुद्धि, शब्द आदिकको मिथ्या माननेपर, शब्द ज्ञानको मिथ्या माननेपर जो ये विज्ञानवादी शङ्काकार परमाणु आदिकमें दूषण देता है, क्योंकि विज्ञानवादी परमाणुको भी परमार्थ नहीं मानता। वह तो केवल ज्ञानक्षणको ही मानता है तो वह शङ्काकार परमाणु आदिक दूषण दे रहा है वह किस बलपर दे सकेगा? तब समझना चाहिए कि परमाणु आदिको दूषण देनेमें शब्दज्ञान ही शरण है। क्योंकि अतत्त्वज्ञानसे याने जो तत्त्वज्ञान नहीं है, भ्रान्तज्ञान है ऐसे अतत्त्व ज्ञानसे अपना माना हुआ मंतव्य जो कि प्रकरणमें परमार्थ आदिकका अभाव कहा जा रहा है वह परमाणु आदिकके अभावका निराकरण कर बैठेगा, अर्थात् परमाणु आदिक सत् हैं यह सिद्ध हो जायगा यदि तत्त्वज्ञानका शरण नहीं करता है यह विज्ञानवादी तब याने यदि तत्त्वज्ञानके शरणमें नहीं जा रहा है यह विज्ञानवादी तो फिर उसके ज्ञानके द्वारा किया गया कुछ भी अकृत ही रहा, अब यहाँ अतत्त्वज्ञानसे जो निश्चित किया गया वह भी अनिश्चित ही रहा। विज्ञानवादी तब जो कुछ भी कहेगा वह सब भ्रान्त है। कुछ भी निश्चित नहीं कर सकता। सभी दार्शनिकोंने जो अपना इष्ट तत्त्व माना है। और स्वयं जो अनिष्ट तत्त्व मानते हैं उस सबमें जो साधन दे दूषण दे वह तत्त्वज्ञानसे ही दिया जा सकता है। सभी दार्शनिक युक्तियाँ पेश करते हैं और अपने पक्षके साधनका प्रयास करते हैं पर पक्षको दूषित करनेका प्रयास करते हैं। यह सब प्रयास तत्त्वज्ञानसे ही तो होता है। तो यों जब सभी जगह तत्त्वज्ञानका ही वर्णन है तब प्रकृत अनुमानमें जो हेतु दिया गया है वह साध्य दूषण होनेसे जो साध्य बनाया है कि बाह्य अर्थ परमार्थ से सत् है तो इस अनुमान प्रयोगमें हेतुको असिद्ध करनेकी इच्छा रखने वाला यह शङ्काकार अब स्वयं भी निराकृत हो गया है क्योंकि उस हेतुकी असिद्धताका जो कि स्वयं इष्ट है शङ्काकार चाहता है कि स्याद्वादियोंका दिया गया हेतु अथवा बाह्य पदार्थोंको भी परमार्थ माननेवालोंका हेतु असिद्ध होजाय ऐसा शङ्काकारको इष्ट है तो हेतुका असिद्धपना और जो शङ्काकारको अनिष्ट है कि हेतु सिद्ध होजाय, शङ्काकारको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इष्ट नहीं है। सो शङ्काकारका अनिष्ट जो सिद्धपना है इसकी साधन और दूषणके प्रयोगमें ही व्यवस्था बन सकेगी। केवल शङ्काकारके माननेमात्रसे इष्ट सिद्धि न हो जायगी, अनिष्ट दूषित न हो जायगा। उसे युक्तियाँ देनी होंगी, तत्त्व ज्ञानका शरण ग्रहण करना होगा अन्यथा तो साधन दूषण प्रयोगके बिना इष्टका साधन और अनिष्ट के दूषणकी व्यवस्था नहीं बन सकती। तब इष्ट अनिष्टकी साधन व्यवस्था न बननेके कारण फिर तो जो कुछ भी कोई कह दे वही मान लेना चाहिए। यों अटपट किसीकी भी बात तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि किसीका साधन किसीका दूषण बतानेके लिए तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता ही न रही। फिर तो यों समझिये कि जिसका बोल चले, जो ज्यादह बाचाल हो अधिक बोलने वाला हो बस उसका पक्ष सही हो जायगा और चाहे कोई कितना ही बुद्धिमान हो, सभ्यतासे यदि चलता है तो भी उसका पक्ष बलवान न हो सकेगा। यों अटपट कुछ भी कह देनेका प्रसंग होगा।

दृष्ट पदार्थके अपन्हवकी असंगतता—उक्त प्रकरणसे यहाँ यह बात भी समझ लेना चाहिए कि जो लोग दृष्ट पदार्थका अपन्हव मानते हैं अर्थात् यह जो कुछ नजरमें आ रहा है यह कुछ भी नहीं है, सर्व मिथ्या है। इस प्रकार जो दृष्टका अपन्हव मानते हैं वह बिना कारणके ही बन जायगा। यह विज्ञानकी संतान है और नहीं है ऐसा तत्त्व निर्णय तो अब हो न सका। कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्धि शब्द प्रमाणकी व्यवस्था ये विज्ञानवादी मानना ही नहीं चाहते। तो जब विज्ञानकी संतान है अथवा विज्ञानकी संतान नहीं है इस प्रकार जब तत्त्वज्ञानकी प्रतिपत्ति ही न हो सकी, क्योंकि सर्व ज्ञान जब भ्रान्त माननेका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया तो वहाँ कोई तत्त्व सिद्ध नहीं हो सकता। जब कोई तत्त्व सिद्ध न हुआ तो दृष्ट पदार्थोंका अपलाप करना, अभाव बताना यह बात भी बिना कारणके ही हुई। कोई युक्ति बलसे तो सिद्ध न हुई तत्त्वज्ञानसे तो सिद्ध न हुई। अभ्रान्त ज्ञानका तो आलम्बन न हुआ। दृश्यरूप जो ये सब स्कंधाकार दीख रहे हैं इन स्कंधाकारोंके द्वारा अदृश्य होनेपर भी परमाणुओंका सद्भाव सिद्ध होता है। ये परमाणुरूप बाह्य पदार्थ भी हैं। अगर ये परमाणु न होते जो कि अदृश्य हैं, उनके सत्त्वकी ही बात कह रहे हैं। अदृश्य होनेपर भी परमाणु यदि सत् न होते तो स्कंधाकार रूपसे जो ये दिख रहे हैं ये दृष्य पदार्थ ये कहाँसे आते? तो दृश्य कथञ्चित स्कंधाकार रूप हैं। इन सब अवयवियोंसे उन अदृष्य परमाणुओंका सत्त्व सिद्ध होता है उनका निषेध नहीं किया जा सकता, अन्तर्ज्ञेयकी तरह। जैसे विज्ञानवादी शंकाकार अन्तर्ज्ञेयकी सिद्धि में कहता है कि ज्ञान परमाणु अदृश्य ही है और ज्ञानमात्र ही है। फिर भी इन दृष्य पदार्थोंसे ज्ञानपरमाणुओंकी सत्ता सिद्ध होती है अन्यथा नहीं। तो जैसे यह शंकाकार विज्ञानवादी दृश्य पदार्थका व अदृश्य ज्ञानपरमाणुका सद्भाव मान लेता है उसी प्रकार इन दृश्य स्कंधाकारोंका व अदृश्य परमाणुओंका भी सद्भाव सिद्ध होता है, इसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण इस अनुमानमें विज्ञानवादियोंके इष्ट उपादानका प्रयोग किया गया है। तो इस उदाहरणसे भी यह निश्चय होता है कि बाह्य परमाणुओंका सत्त्व है। यदि बाह्य परमाणु न होते तो कथञ्चित दृश्य स्वरूप ये स्कंधाकार भी न होते । इन दृश्य पदार्थोंका अदृश्य परमाणुओंमें सत्व निर्णीत होता है और युक्तिसे भी विचारें जो कुछ ये दिख रहे हैं इनके टुकड़े हो जाते हैं। ये काठ पत्थर आदिक जो कुछ नजर आ रहे हैं इनके टुकड़े हो जायें फिर उनके भी टुकड़े हो जायें। और भी उन टुकड़ों के टुकड़े बराबर होते जायें, आखिर अन्तमें कोई टुकड़ा ऐसा हो जाय कि जिसका दूसरा टुकड़ा किया न जा सके, वह टुकड़ा अभी परमाणु रूप नहीं है। वह सूक्ष्म टुकड़ा हो गया है लेकिन उसके और टुकड़े भी हो सकते हैं। न किए जायें किन्तु कारण कलापसे अथवा काललब्धिसे उनके और भी टुकड़े हो सकते हैं। यों होते-होते अंतिम अंश जिस किसी भी प्रकार न हो सके ऐसा अन्तिम निरंश ही तो परमाणु है। यों युक्तियोंसे भी सिद्ध होता है।

विभक्तकान्तवादकी मीमांसा- और भी सुनो ! जो दार्शनिक स्कन्धमें भी विभक्त परमाणु पूर्ववत् मानते हैं तो वे जो बाह्य परमाणु हैं उन परमाणुओंमें जो सम्बन्ध बना है, अवयवी रूपसे परिणमन हुआ है उस परिणमनके सम्बन्धमें यह बतलाओ कि उन जड़रूप परमाणुओंने क्या पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर और नीचे ऊपर इन छः दिशाओंके विभाग भेदसे क्या उनमें ६ तरहके स्कंध हैं ? क्या परमाणु षट्कोण है और उसकी कल्पना कराकर फिर उसमें सम्बन्ध किस तरह बना ? ऐसी बात कहकर ये विज्ञानवादी उन जैन या वैशेषिक आदिकके पक्षमें जो उपालम्भ देते हैं उन परमाणु आदिकका निराकरण करते हैं तो उस निराकरणमें तो इन विज्ञानवादी बौद्धजनोंका स्वपक्ष भी निराकृत हो जाता है, क्योंकि यहाँ परपक्षका उपालम्भ युक्तिपूर्ण न बना, वह तो उपालम्भाभास है। सौगत पक्षमें भी तो ज्ञान संतान ही माना गया है और वह क्षणिक है अनन्यवेद्य है उसका भी तो निराकरण हो जाता है। और कुछ दूषण यह क्षणिकवादी परमार्थ परमाणुओंको मानने वालेके सिद्धान्त में देते हैं वे ही दूषण विज्ञानवादियोंके सिद्धान्तमें भी लगते हैं। जैसे कि बाह्य परमाणुओंमें इन क्षणिकवादियों केदूषण दिया गया उसी प्रकार ज्ञान परमाणुओंमें भी वही दूषण दिया जा सकता है। यहाँ यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि विज्ञानवादी केवल सारे जगतमें फैला हुआ एक ज्ञान नहीं मानते, किन्तु प्रत्येक शरीरमें भिन्न-भिन्न ज्ञान है और इतना ही नहीं किन्तु प्रतिक्षण नया-नया उत्पन्न होने वाला ज्ञान है। यों ज्ञान परमाणु स्वीकार करते हैं। तो जैसे बाह्यमें परमाणुओंको मानने वाले दार्शनिकोंके सिद्धान्तमें ये विज्ञानवादी दूषण देते हैं वे सब दूषण ज्ञान परमाणुओंमें भी लगते हैं।

अत्यन्त पृथक सत् ज्ञानपरमाणुवोंमें संतानकी असिद्धि—बतायें ये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षणिकवादी कि वह ज्ञान परमाणु है तो एक परमाणुका दूसरे परमाणुके साथ एक देशसे सम्बन्ध होता है या सर्वदेशसे सम्बन्ध होता है ? दो ज्ञान परमाणु हैं अब वे दोनों ज्ञान परमाणु संतान चल रहे हैं तो संतान तो तभी बनता है जब कि वे सटे हुए हों। तो एक ज्ञान परमाणु दूसरे ज्ञान परमाणुओंसे सटा हुआ यदि है तो बताओ वह एक ओरसे सटा हुआ है कि सब ओरसे सटा हुआ है ? अगर एक ओरसे सटा हुआ है तब तो उस ज्ञान परमाणुके ६ अंश हो गए, क्योंकि ६ दिशायें हैं। कोई परमाणु पूर्वसे आकर लगा, कोई ज्ञानपरमाणु दक्षिणसे आकर लगा, कोई पश्चिम आदिकसे तो यों दिशाओंके भेदसे उन ज्ञान परमाणुओंमें भी अंश विभाग बन जायेंगे, यदि कहो कि सर्वात्मक रूपसे उनमें सम्बन्ध होता है तब तो उन ज्ञानपरमाणुओंका जो प्रचय है, समूह है वह सब एक परमाणुमात्र रह जायगा। यदि उस प्रचयका याने ज्ञानपरमाणुओंके पुञ्जका परमाणुओंसे भेद मानोगे याने ज्ञान परमाणुओंका पिण्ड है और षटकोण ज्ञान परमाणुको अलग मानोगे तो प्रत्येक ज्ञान परमाणुमें वह सम्बंधित हो गया। तो उसमें यदि वह परिसमाप्तिसे रह रहा है तो नाना प्रचय बन जायगा। नाना ज्ञानस्कंध बन जायेंगे और अगर एक देशसे रह रहा है तो एक परमाणु प्रचय से एक देशसे टिका हुआ है तब परमाणुओंमें अंशपना आ जायगा और इस तरह कहीं भी अवस्थिति न बन सकेगी। तो जैसे दोष यह विज्ञानवादी बाह्य परमाणुओंमें देता है वे सब दोष यहाँ ज्ञान परमाणुओंमें भी युक्त हो जायेंगे। अब यह बतलाइये कि परमाणुओंके साथ चाहे वे संसृष्ट हों, मिले हुए हों, अथवा व्यवहित हों, जुदे जुदे हों, उनके द्वारा प्रचयका उपकार यदि किया जा सकता है तो उनके संसर्ग मेलका असम्भवपना नहीं बनता और व्यवधानके द्वारा उनका यदि संसर्ग बनाया जाता है तो जो अन्तरमें व्यवधान पड़ा है उस अन्तरमें जो भी व्यवधान कराने वाला हो वह सजातीय है या विजातीय ? सजातीय हो वा विजातीय हो किसीका भी व्यवधान बने तो फिर यही प्रश्न उठता चला जायगा और अनवस्थाका प्रसंग आयगा। इस कारण से बाह्य परमाणुओंके खण्डन करनेके प्रयासमें स्वयं विज्ञानवादीके पक्षका घात हो जाता है।

हर्षविषादाद्यात्मक चेतनमें व सूक्ष्मस्थूलाकार स्कन्धमें विरोधादि दूषणका अनवकाश—सूक्ष्म स्थूल स्वरूप बाह्य जात्यंतरमें पूर्वोक्त दोषका अवकाश नहीं है। जैसे कि हर्ष विषाद आदिक अनेकाकारात्मक आत्मामें नाना परिणमनोंका, अवस्थाका कोई दोष नहीं आता है। यहाँ शंकाकार कहता है कि वहाँपर भी विरोध नामका दूषण आता है। अर्थात् वह पदार्थ सूक्ष्म भी है और स्थूल भी है ऐसा कैसे हो सकता ? जो सूक्ष्म है वह स्थूल न होगा जो स्थूल है वह सूक्ष्म न होगा अथवा एक ही आत्मामें हर्ष विषादादिक अनेक आकार कैसे बन सकते हैं ? तो यह विरोध आता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि क्या यह विरोध सर्वथा देखा जा रहा है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

या कथञ्चित्? यदि कहो कि सर्वथा ही दोष माना है तो यह बात असंगत है। सर्वथा तो कहीं भी विरोध नहीं हो सकता। यह कहेंगे अधिकसे अधिक। ठंढस्पर्श गर्मस्पर्श इनमें तो विरोध है। तो भले ही किसी रूपसे विरोध है मगर सत्त्व प्रमेयत्व आदिक की दृष्टिसे कोई विरोध नहीं है। शीतस्पर्शमें भी सत्त्व प्रमेयत्व आदिक हैं, उष्ण स्पर्शमें भी सत्त्व प्रमेयत्व आदिक हैं। तो यों सर्वथा विरोध कहीं भी सिद्ध नहीं हो सकता। अपने माने हुए तत्त्वमें भी सर्वथा विरोध नहीं मान रहे हो ज्ञानकी दृष्टिसे तो वह अनेकाकार है परन्तु वहाँ जो एकाकारमें झलक रहे हैं, जो बाह्य पदार्थोंका प्रतिबिम्ब हुआ है उस दृष्टिसे नानाकार है। अतः सर्वथा विरोध कहीं भी सम्भव नहीं हो सकता। वहाँ भी सर्वथा विरोध नहीं है। यदि कहो कि उस चित्रज्ञानमें तो कथञ्चित विरोधका परिहार है अर्थात् नील पीत आदिककी अपेक्षासे विरोध नहीं है। तो भाई यही बात तो कही जा रही है। यह कथञ्चित विरोध ही तो रहा और कथञ्चित नहीं रहा तो द्वितीय पक्ष भी दूषण देनेमें समर्थ नहीं है, न तो यहाँ कोई साक्षात् दोष है न कोई परम्पर्या दोष है। और देखिये—यह बात भी निर्विरोध सिद्ध होती है। विवादापन्न ज्ञानस्वरूपसे व्यतिरिक्त अर्थका आलम्बन करने वाला होता है, क्योंकि वह ग्राह्य ग्राहकाकार रूप है। इस अनुमानमें यह बात सिद्ध की गई है कि प्रत्येक ज्ञान ज्ञानस्वरूपसे अतिरिक्त अन्य पदार्थ उनको विषय करता हुआ ही होता है। क्योंकि ज्ञानमें ग्राह्याकार भी आता है और ग्राहकाकार भी रहता है। तो ग्राह्याकार और ग्राहकाकार रूप होनेसे वह ज्ञान बाह्य पदार्थका विषय करने वाला ही समझा जाता है। जैसे संतानान्तरकी सिद्धि।

ग्राह्यग्राहकाकारभेदको भ्रान्त माननेपर विडम्बना—शंकाकार कहता है कि भ्रमज्ञानमें जो ग्राह्याकार, ग्राहकाकारपना रहता है उससे इस हेतुका व्यभिचार हो जायगा अर्थात् भ्रम वाले ज्ञानमें भी ग्राह्याकार और ग्राहकाकार है। लेकिन वह किसी पदार्थका आलम्बन नहीं करता, क्योंकि वहाँ पदार्थ ही नहीं है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो फिर जो शंकाकार अन्य संतानमें ज्ञानकी सिद्धि करता है और उसका साधन बनाता है उस साधनमें भी व्यभिचार आ जायगा। उनका अनुमान है कि यहाँ बुद्धि है। क्योंकि व्यापार आदिकका प्रतिभास हो रहा है। कोई भी पुरुष अन्य पुरुषमें ज्ञान है इसकी सिद्धि किस प्रकार करता? उसकी सिद्धि इस प्रकार होती है कि वह अनुमान करता है कि इस संतानान्तरमें भी ज्ञान है क्योंकि प्रवृत्ति है, व्यापार है। यदि ज्ञान नहीं होता तो व्यापार प्रतिभासकी बात कहकर बुद्धिकी बात सिद्ध कर रहे हो तो कोई पुरुष स्वप्नदशामें जहाँ बुद्धि नहीं मानी गई है, ये क्षणिकवादी स्वप्नदशामें ज्ञान नहीं मानते हैं। किन्तु जगनेपर जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानका सोनेसे पहिले जो ज्ञान हुआ था उसका कारण मान बैठते हैं। तो स्वप्नदशामें कोई पुरुष हाथ पैर भी चला देता है और वहाँ बुद्धि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं मानी गई। तो यों संतानान्तरके साधनमें भी व्यभिचार आ जायगा। यह बात नहीं कह सकते कि व्यापार व्यवहार वचनालाप आदिकका आभास होना भ्रमरूप नहीं होता। जिससे कि शंकाकार अपने हेतुको अव्यभिचारी सिद्ध कर सके। होता है भ्रमरूप। सोती हुई हालतमें भी लोग हाथ पैर चलाते हैं। यहाँ तक देखा गया है कि सोते हुएमें उठकर काम भी कर लेते, किवाड़ खोल लेते, कहींसे कहीं जाकर सो जाते और उन्हें यह मालूम नहीं होता कि मैंने क्या किया? तो ऐसे व्यापारादिक जो भ्रमरूप हैं वे बराबर देखे जाते हैं। इससे संतानान्तरकी सिद्धि करनेमें जो साधन देता है शंकाकार उसमें भी व्यभिचारी आ जायगा।

वस्तुतः न मानकर वासनाभेदसे ग्राह्याकार ग्राहकाकार माननेपर अव्यवस्थाका दिग्दर्शन—शंकाकार कहता है कि ज्ञानमें ग्राह्य ग्राहकाकारपन वासना भेदसे ही होता है, बाह्य अर्थका सद्भाव होनेसे नहीं माना गया है, जैसे कि स्याद्वादी जैन आदिक लोग ज्ञानमें ग्राह्याकार ग्राहकाकार बताकर बाह्य अर्थकी सिद्धि करना चाहते हैं सो बात वहाँ ऐसी नहीं है। विज्ञानवादी कहे जा रहे हैं कि वहाँ ज्ञानमें ग्राह्याकार ग्राहकाकार तो आया है पर वह वासनाके भेदसे आया है। ऐसा नहीं है कि बाहरमें कोई पदार्थ है ऐसा जिसके कारण ग्राह्याकार और ग्राहकाकार बना हो? इसके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो फिर अन्य जगह भी वासनाभेद मान लिया जाय फिर संतानान्तर सिद्ध न होगा। जैसे कि जागृत दशामें बाह्य अर्थ वासनाकी दृढ़ताके कारण तदाकार होने वाले ज्ञानमें साधनपनेका अभिमान किये जा रहा है परन्तु स्वप्न आदिक दशामें उस वासनामें दृढता न होनेके कारण स्वप्न-दशाके ज्ञानको असिद्धपनेकी बात की जा रही है और यह माना जा रहा है कि परमार्थतः बाह्य पदार्थ कुछ भी सिद्ध नहीं होता, केवल वासनाभेद ही है। तो जैसे शंकाकार यहाँ वासनाभेदसे सारी व्यवस्था बनाये जा रहा है उसी प्रकार जागृत दशामें अन्य संतानके ज्ञानकी वासनाकी दृढतमतासे सत्यताका अभिमान करले अर्थात् जिस ज्ञानमें जो ग्राह्याकार ग्राहकाकार बन रहा है उसके लिये यों कहा जा रहा है यह ग्राह्याकार ग्राहकाकार वासनासे बन गया है। कहीं बाहरमें पदार्थ होनेके कारण नहीं बने हैं तब इसी तरह जब किसी दूसरे पुरुषमें ज्ञानका अनुमान करता है यह शंकाकार तो वहाँ भी यही मानले वह कि बाह्यमें ज्ञानक्षण नहीं है, सन्तानान्तर भी नहीं हैं। किसी अन्य पुरुषमें ज्ञानका सद्भाव नहीं है किन्तु जो परख रहती है दूसरे पुरुषमें ज्ञानसे भी वह पुरुष अपनी ही वासनाके कारण ऐसी कल्पना कर रहा है। तो यहाँ भी वे वासनाभेद ही मान लें कि वासनाकेदवे ही कारण अन्य संतानमें ज्ञान-क्षण है ऐसी स्थितियोंका अभिमान बनता है और स्वप्न आदिक दशाओंमें उस वासनाकी दृढतमता नहीं है। इससे असिद्धताका व्यवहार बन रहा है। इस तरहका वासनाभेद वहाँ भी मान लीजिए। पर संतानान्तर मत मानो। फिर जब संताना-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न्तर न माना तब निज संतानमें क्षणिकता आदिककी सिद्धि भी कैसे समझी जायगी?

ज्ञान ज्ञेयमेंसे किसी भी एकको माननेपर द्वितीयकी अवश्यंभाविनी सिद्धि – बहुत दूर जाकर भी अर्थात् बड़ी चर्चायें करनेके बाद भी यह मानना ही पड़ेगा कि कोई ज्ञान अपने इष्ट तत्त्वका आलम्बन करने वाला होता है। और, वही वेद्याकार वेदकाकार बाह्य अर्थ ज्ञानमें स्वरूपसे अन्य किसी पदार्थके आलम्बनको सिद्ध कर देता है अर्थात् ज्ञानमें जब ग्राह्याकार ग्राहकाकार बन रहे हैं तो उससे बाह्य पदार्थ अवश्य हैं यह सिद्ध होता है। न होते बाह्य पदार्थ तो ज्ञानमें यह विषय यह आकार कैसे प्रतिबिम्बित होता, इस कारण उक्त प्रकारसे बाह्य अर्थकी सिद्धि होगई, तो बाह्य अर्थकी सिद्धि होनेसे वक्ता, श्रोता, प्रमाता ये तीन सिद्ध हो गए और फिर उन तीनोंके बोध, वाक्य और प्रमा याने बुद्धि ये भी तीनों सिद्ध हो जाते हैं। यों मूल बात कही जा रही थी कि जीव शब्द बाह्य अर्थसे सहित है याने जीव शब्द वाचक है और उससे जीव नामक पदार्थ वाच्य होते हैं। तो जीव शब्दसे सबाह्य अर्थपना सिद्ध करनेमें उस संज्ञापनका हेतु दिया गया है। उस हेतुमें न असिद्ध दोष है न अनेकांतिक दोष है और न वहाँ जो दृष्टान्त बताया गया है जैसे हेतु शब्द, माया शब्द, भ्रान्ति शब्द, प्रमाशब्द, किन्हीं भी दृष्टान्तोंमें कोई दोष नहीं है। कोई भी दृष्टान्त साधन धर्म, साध्य धर्म आदिकसे रहित नहीं है जिससे कि जीवकी सिद्धि न हो। तो जीव शब्दसे ही जीव पदार्थकी सिद्धि हो जाती है। जब जीवकी सिद्धि हो गयी तब अर्थको जानकर पदार्थको समझकर प्रवृत्ति करने वाले सम्वाद और विसम्वादकी सिद्धि सिद्ध हो ही जाती है। इसी प्रकार यहाँ तक यह सिद्ध हुआ कि केवल अन्तरङ्ग पदार्थ ही नहीं है बहिरङ्ग पदार्थ भी है याने केवलज्ञान ज्ञान ही हो सो बात नहीं है किन्तु घट पट आदिक बाह्य पदार्थ भी हैं, सभी अनुभव करते हैं कि हम जान भी रहे हैं और बाह्य पदार्थोंको भी समझ रहे हैं।

भावप्रमेयमें संवादकी अपेक्षासे अभ्रान्तता व बाह्य अर्थमें विसंवाद की अपेक्षासे भ्रान्तताके सम्बन्धमें सप्तभङ्गी प्रक्रिया—ज्ञानमें जो प्रमाणता आती है वह ज्ञानकी दृष्टिसे देखा जाय तो सारा ज्ञान प्रमाण है, परन्तु बाह्य पदार्थों की ओरसे देखा जाय तो कोई ज्ञान प्रमाण होता है और कोई ज्ञान प्रमाणाभास होता है इस तरह स्याद्वाद विधिसे यह सिद्ध होता है कि ज्ञानरूपकी अपेक्षासे तो ज्ञान अभ्रान्त ही होता है। क्योंकि वहां सत्यताकी अपेक्षा है। ज्ञान जो कुछ भी प्रवृत्ति करे ज्ञानमें वह आता है और ज्ञानकी वृत्ति है उतनी वहां सच्चाई है। तो सम्वादकी अपेक्षासे सर्व ज्ञानभाव प्रमेयमें चूंकि विसम्वाद हो रहा है इस दृष्टिसे सारे ज्ञान अभ्रान्त ही होते हैं। दूसरा भङ्ग यह है कि बाह्य अर्थमें विसम्वादकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपेक्षा भी होती है इस दृष्टिसे ज्ञान भ्रान्त होता है, विसम्वाद हुआ करता है बाह्य पदार्थके विषयसे। स्वयं ज्ञान ज्ञानमें प्रवृत्ति करे तो वहाँ क्या विसम्वाद है ? बाह्य पदार्थ वैसा न हो और वैसी समझ आ जाय तो समझिये कि वह भ्रान्त है। अब क्रमसे अर्पित दोनों दृष्टियोंसे ज्ञान स्यात् उभयरूप है। एक साथ अर्पित दोनों बातोंसे स्यात् अवक्तव्य है अब सम्वादकी दृष्टिसे और एक साथ अर्पित दोनों दृष्टियोंसे स्यात् भ्रान्त अवक्तव्य है विसम्वादकी दृष्टिसे तथा एक साथ अर्पित दोनों दृष्टियोंसे ज्ञान कथंचित् भ्रान्त अवक्तव्य है। क्रम और अक्रमसे अर्पित दोनों दृष्टियोंसे ज्ञान उभय अवक्तव्य हैं। इस प्रकार सप्तभङ्गीकी प्रक्रियामें पूर्वकी तरह यहाँ भी लगा लेना चाहिए और पूर्वकी ही तरह एक है कि अनेक है? नित्य है कि अनित्य है? सभी विषयोंमें उसका विचार सप्तभंगी न्यायसे सिद्ध कर लेना चाहिए, यह सब बात प्रमाण और नयकी विवक्षासे समझ लेनी चाहिए। इस परिच्छेदमें बात यह कही गई है कि कोई मात्र ज्ञानको ही माने, बाह्य तत्त्वका निषेध करे तो उसका जानना सिद्ध नहीं होता और निष्फल होता है। कोई पुरुष केवल बाह्य अर्थ ही माने और ज्ञान न माने तो उससे भी उसकी कोई सिद्धि नहीं। अतः ज्ञान भी है और बाह्य तत्त्व भी है। सर्व प्रकार परीक्षा करके सर्व से व्यामोह हटाकर अपने ज्ञानस्वरूपमें ही उपयोगको रमायें, यही एक कल्याणका उपाय है।

Version 1